# गोविन्द बल्लभ पंत स्मृति व्याख्यान - 2025

## स्मृति व्याख्यान: XXXI

**डॉ. जी.एस. रावत**

10 सितंबर 2025

कोसी- कटारमल, अल्मोड़ा


**गोविन्द बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान**

(पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार का एक स्वायत्त संस्थान)

कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, 263 643, उत्तराखंड, भारत

# डॉ. जी.एस. रावत

डॉ. गोपाल सिंह रावत, भारतीय वन्यजीव संस्थान, देहरादून के पूर्व डीन और निदेशक रहे हैं, तथा पिछले 45 वर्षों से शिक्षण, अनुसंधान और शैक्षणिक गतिविधियों में सक्रिय रूप से अपना योगदान दे रहे हैं। उनकी विशेषज्ञता हिमालयी क्षेत्र में पारिस्थितिक-पुष्पविज्ञान अध्ययन, उच्च हिमालयी पर्वत श्रृंखलाओं की पारिस्थितिकी और प्रबंधन, औषधीय पौधों की स्थिति सर्वेक्षण और वन्यजीव प्राकृतिक वास एवं पारिस्थितिकी शामिल हैं। उन्होंने कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल से वनस्पति विज्ञान में पीएच.डी. और डी.एससी. की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। डॉ. रावत द्वारा 325 से अधिक शोधपत्र प्रकाशित किये गये हैं, जिनमें प्रमुखतः भारत में पादप प्रणाली विज्ञान, प्राकृतिक विज्ञान और वन्यजीव पर्यावास प्रबंधन सहित विविध विषयों पर समकक्षों द्वारा समीक्षित शोधपत्र, पुस्तकें, रिपोर्ट और लोकप्रिय लेख शामिल हैं। उन्होंने 35 से अधिक पीएचडी और 15 मास्टर्स छात्रों का मार्गदर्शन किया है। वर्ष 2004 में, उन्होंने भारत-नेपाल सीमा से पवित्र अमरनाथ तक पश्चिमी हिमालय के उच्च हिमालयी क्षेत्र में एक पारिस्थितिकी अभियान चलाया और सर्वेक्षण मार्ग के साथ अल्पाइन घास के मैदानों, वन्यजीव आवासों और उच्च गुणवत्ता वाले औषधीय और सुगंधित पौधों की स्थिति का दस्तावेजीकरण किया। उनके अन्य अनुभवों में काठमांडू स्थित अंतर्राष्ट्रीय एकीकृत पर्वतीय विकास केंद्र (आईसीआईएमओडी) में पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के मुख्य वैज्ञानिक के रूप में कार्य करना (2011-14), योजना आयोग के लिए पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्र पर टास्क फोर्स के सदस्य (2006-08), आईयूसीएन (एसएससी) आर्किड और औषधीय पादप विशेषज्ञ समूहों के सदस्य और एशिया-प्रशांत क्षेत्र के लिए जैव विविधता और पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं पर अंतर-सरकारी पैनल के विशेषज्ञ सदस्य के रूप में कार्य करना शामिल है। वर्तमान में वे केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख के योजना बोर्ड के सदस्य और भारत सरकार के पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय द्वारा गठित भारत में आक्रामक विदेशी प्रजातियों के प्रबंधन और पादप संरक्षण के लिए विशेषज्ञ समिति के सदस्य हैं। उन्होंने केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख के लिए पर्वतीय और पर्वतीय नीति निर्माण हेतु गठित समिति के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया है।

डॉ. रावत इलाहाबाद स्थित राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के फेलो (2004), लंदन स्थित लिनियन सोसाइटी के फेलो (2023) और राष्ट्रीय पारिस्थितिकी संस्थान के फेलो (2024) हैं। उन्हें उत्तराखंड के ऑर्किड पर उनके कार्य के लिए प्रतिष्ठित टी.एन. खोशू मेमोरियल पुरस्कार (2019) और अल्पाइन प्लांट सिस्टमैटिक्स एंड इकोलॉजी पर उनके कार्य के लिए पॉल स्टुसी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है।

# गोविन्द बल्लभ पंत
# स्मृति व्याख्यान - 2025

## स्मृति व्याख्यान: XXXI

**डॉ. जी.एस. रावत**

**10 सितंबर 2025**

**कोसी- कटारमल, अल्मोड़ा**

**गोविन्द बल्लभ पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान**
(पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, भारत सरकार का एक स्वायत्त संस्थान)
**कोसी-कटारमल, अल्मोड़ा, 263 643, उत्तराखंड, भारत**

# भारतीय ट्रांस-हिमालय के चारागाही क्षेत्र: पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की निरंतरता एवं पशुपालक आजीविकाओं का सुदृढ़ीकरण

"सम्माननीय मुख्य अतिथि, विशिष्ट अतिथि गण, निदेशक, जी.बी. पंत राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान, संस्थान परिवार के समस्त गणमान्य सदस्य तथा पत्रकारिता-जगत से सम्बद्ध प्रिय मित्रगण।" मेरे लिए यह अत्यन्त हर्ष और गौरव का विषय है कि इस संस्थान के वार्षिकोत्सव अवसर पर मुझे 31वाँ पं. गोविन्द बल्लभ पंत स्मृति व्याख्यान प्रस्तुत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सर्वप्रथम, इस गौरवपूर्ण अवसर हेतु मैं संस्थान के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। आगे बढ़ने से पूर्व, मैं भारत रत्न पं. गोविन्द बल्लभ पंत को उनकी जयंती पर अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। हम सभी जानते हैं कि वे भारत की स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी सेनानी तथा इस धरातल के एक दूरदर्शी नेतृत्वकर्ता रहे।

मेरे व्याख्यान का विषय है, "भारतीय ट्रांस-हिमालय के चारागाही परिदृश्यः पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं एवं पशुपालक आजीविकाओं का सुदृढ़ीकरण एवं संवर्धन"। इस व्याख्यान में मैं, भारतीय ट्रांस-हिमालय की पृष्ठभूमि, इस क्षेत्र में परिवर्तित होती पशुपालक परम्पराओं की शैली, प्रमुख समस्याएँ एवं चुनौतियाँ, तथा मानव कल्याण के लिए पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं के संरक्षण एवं संवर्धन की प्रमुख रणनीतियों पर अपने शोध एवं सर्वेक्षणों को आपके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूं। यह प्रस्तुति तथ्याधारित साक्ष्यों, भारतीय उच्च हिमालयी क्षेत्रों के शुष्क चारागाही भूमि प्रक्षेत्रों में विगत चार दशकों से किए गए मेरे पारिस्थितिकी सर्वेक्षणों के अनुभवों तथा प्रकाशित साहित्य पर आधारित है।

इस व्याख्यान की समाप्ति पर मैं आप सभी के प्रश्नों एवं सुझावों का स्वागत करूँगा।

**1.0 पृष्ठभूमि**

हिमालयी क्षेत्रों के महत्व पर बहुत कुछ लिखा और कहा गया है। इन्हें कभी वैश्विक धरोहर, तो कभी एशिया के जल-स्तम्भ, कभी जलवायु परिवर्तन के प्रहरी और आश्रय स्थल, और सबसे बढ़कर उन करोड़ों लोगों के जीवनदाता के रूप में देखा गया है जो इस क्षेत्र में ही नहीं बल्कि नीचे की घाटियों और मैदानी इलाकों में भी रहते हैं। सच तो यह है कि हिमालय हमें असंख्य पारिस्थितिकी तंत्र सेवाएँ प्रदान करता है। यदि हम इन सेवाओं का सही मूल्यांकन करें, उनका विवेकपूर्ण उपयोग करें और उन्हें न्यायपूर्ण ढंग से साझा करें, तो यही इस क्षेत्र में सतत विकास और मानव कल्याण की वास्तविक रीढ़ बन सकती हैं। आज यह भी स्पष्ट है कि राष्ट्रीय और राज्य सरकारें ग्रामीण विकास, खाद्य सुरक्षा, जल प्रबंधन और जलवायु कार्यवाही जैसे क्षेत्रों में सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) को आगे बढ़ाने में लगी हुई हैं। इसी दिशा में अनेक संस्थान और शोधकर्ता विविध विषयों पर अनुसंधान कर रहे हैं और सतत् विकास लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्रासंगिक ज्ञान, उपकरण और तकनीकें विकसित कर रहे हैं, ताकि इन लक्ष्यों की प्राप्ति संभव हो सके। हिमालयी क्षेत्र में सतत् विकास पर अनुसंधान की चर्चा आते ही हमें पर्वतीय कृषि प्रणालियों के विद्वान डॉ. एन.एस. जोधा का पथप्रदर्शक कार्य स्मरण होता है। उन्होंने पर्वतीय विशिष्टताओं पर आधारित एक रूपरेखा प्रस्तुत की थी (जोधा, 1992)। उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया कि पर्वतीय पारिस्थितिकी तंत्र की विशिष्टताओं को समझना अत्यावश्यक है, क्योंकि ये सतत् विकास के लिए चुनौतियाँ तो प्रस्तुत करती ही हैं, साथ ही अवसर भी प्रदान करती हैं। उनके अनुसार पहाड़ी इलाकों की सबसे बड़ी मुश्किलें निम्नलिखित हैं-

पहुँच न होना, नाजुक हालात और हाशिये पर होना; लेकिन

इन्हीं इलाकों की सबसे बड़ी ताकत है-उनकी विविधता, विशिष्ट अवसर, बदलते हालात में ढलने की क्षमता और स्थानीय समुदायों की दृढ़ता। डॉ. जोधा ने यह भी समझाया कि ये विशेषताएँ हमेशा एक जैसी नहीं रहतीं। समय के साथ, वैश्वीकरण, जलवायु परिवर्तन और नीतिगत हस्तक्षेप इन्हें बदलते रहते हैं। इसलिए विकास की रणनीतियाँ भी स्थिर नहीं रह सकतीं, उन्हें लचीला और परिस्थितियों के अनुसार ढलने वाला होना ही पड़ेगा। समकालीन साहित्य में हिमालयी पर्यावरण से जुड़े अनेक मुद्दों को प्रायः सामान्यीकृत रूप में प्रस्तुत किया जाता है, जबकि उप-क्षेत्रीय विशिष्टताओं और सामाजिक-पर्यावरणीय परिस्थितियों का उल्लेख प्रायः नहीं मिलता। भारतीय हिमालयी क्षेत्र की बात करें तो हमें चार भिन्न उप-क्षेत्रों को पहचानना आवश्यक है:

पूर्वोत्तर पहाड़ी राज्य, हिमालय और ट्रांस-हिमालय। यहाँ मैं विशेष रूप से भारतीय ट्रांस-हिमालय का उल्लेख कर रहा हूँ, जो महान हिमालय की वर्षा-छाया क्षेत्र में स्थित है और जिसे प्रायः हिमरेखीय शुष्क पारिस्थितिकी तंत्र अथवा शीत मरुस्थल कहा जाता है। यह क्षेत्र अपनी चार जैव-भौगोलिक प्रान्तों-लद्दाख पर्वत, चांगथांग पठार, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड के सीमांत क्षेत्र और सिक्किम (रोडगर्स एवं पवन 1988; कुमार एट ऑल., 2018) के कारण एक विशिष्ट जैव-भौगोलिक परिक्षेत्र बनाता है।

यह क्षेत्र केवल अपनी अद्वितीय पारिस्थितिकी, सामाजिक-सांस्कृतिक धरोहर और भौगोलिक, विशेषताओं के कारण ही आकर्षक नहीं है, बल्कि राजनीतिक दृष्टि से भी अत्यंत संवेदनशील है। सामान्यतः 3000 मीटर से अधिक ऊँचाई (औसत ऊँचाई लगभग 4500 मीटर) पर स्थित यह क्षेत्र अत्यंत कठोर जलवायु, दुर्लभ वनस्पति आच्छादन, अल्प फसल अवधि और न्यून प्राथमिक उत्पादकता से चिह्नित है। फिर भी, यह हमें पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं की एक विस्तृत श्रृंखला उपलब्ध कराता है। इस क्षेत्र से प्राप्त प्रमुख प्रदाय सेवाओं में चारागाही संसाधन शामिल हैं, जो स्थानीय अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं और सदियों से कृषि-पशुपालक समुदायों को मजबूत करते आए हैं। साथ ही, यह क्षेत्र वैश्विक स्तर पर संकटग्रस्त अनेक वनस्पति एवं जीव प्रजातियों का आवास भी है। इसके अतिरिक्त, यही क्षेत्र नदियों और धाराओं का ऊपरी जलग्रहण क्षेत्र बनाता है, जिसका लाभ अन्ततः सभी निचले क्षेत्रों की समुदायों तक पहुँचता है, और साथ ही यह क्षेत्र अनेक उच्च-मूल्य औषधीय एवं सुगंधित पौधों (MAP) का भण्डार भी है। भारतीय ट्रांस-हिमालय के चारागाही प्रदेशों की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं? इस क्षेत्र में वर्तमान समय में पशुपालक प्रथाओं में किस प्रकार के रुझान दिखाई दे रहे हैं? चारागाही भूमि के सतत प्रबंधन में मुख्य समस्याएँ और चुनौतियाँ क्या हैं? बदलते जलवायु परिदृश्य, वैश्वीकरण और बढ़ती पहुँच के बीच, इन चारागाहों का प्रबंधन किस प्रकार किया जाए ताकि पशुपालक आजीविकाएँ और इनसे जुड़ी विविध सेवाएँ दीर्घकालिक मानव कल्याण को सुनिश्चित कर सकें? और अंततः, इन अल्पाइन शुष्क चारागाही प्रदेशों के एकीकृत संरक्षण और विकास का सर्वोत्तम मार्ग कौन-सा हो सकता है?

इन्हीं मूलभूत प्रश्नों पर आगामी अनुभागों में विस्तार से विचार किया गया है।

**2.0 ट्रांस-हिमालयी चरागाहों की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?**

ग्रेटर हिमालय की अल्पाइन पारितंत्र से भिन्न, ट्रांस-हिमालयी अथवा अल्पाइन शुष्क चरागाह प्राचीन पारितंत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिसकी उत्पत्ति लगभग 5 करोड़ वर्ष पूर्व मियोसीन काल में भारतीय और यूरेशियाई प्लेटों की टक्कर के दौरान हुई थी। हिमालय के अंतिम विकास चरण और ग्रेटर हिमालय की वर्षा-छाया प्रभाव के बाद, ये अल्पाइन शुष्क क्षेत्र क्रमशः ऊबड़-खाबड़ पर्वतीय ढलानों, नदी घाटियों, अंतर्देशीय झील बेसिनों और विस्तृत तरंगित पठारों में परिवर्तित हो गए। इन क्षेत्रों में दूर्लभ वनस्पति पाई जाती है, जो मुख्यतः मरुस्थलीय स्टेपी, झाड़ीदार स्टेपी, उच्च अल्पाइन घास तथा सेज-प्रधान समुदायों के रूप में विद्यमान है।

इस क्षेत्र में जंगली याक (*Bos grunniense*) जैसे बौविड्स, तिब्बती जंगली गधा (*Equus kiang kiang*) जैसे इक्विड्स तथा कई जंगली कैप्रिड्स की उपस्थिति, चरवाहों और घास-वनस्पतियों के गहन सह-विकास का संकेत देती है। इन्हीं पारितंत्रों में याक और कैप्रिड्स का वशीकरण हुआ और

सताब्दियों तक इनका अस्तित्व कायम रहा। वर्तमान ट्रांस-हिमालयी चरागाहों में अनेकों आर्द्रभूमियाँ, प्राचीन झीलों के अवशेष बेसिन तथा पीछे हटे टेथिस सागर की तलहटी शामिल हैं। इस क्षेत्र के 80% से अधिक भू-भाग में खेती संभव नहीं है। स्थानीय कृषि-पालक समुदाय सदियों से इन क्षेत्रों का उपयोग पशु-चारण के लिए करते आए हैं। इन समुदायों ने अत्यंत समृद्ध संस्कृति और पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान विरासत में पाया है, जो सतत जीवन शैली से गहराई से जुड़ा है। अब तक, उन्होंने प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर जीवन जिया है, जिसका प्रमाण यहां की समृद्ध वनस्पति और जीव-जंतु जगत है, जिसमें कई स्थानिक और वैश्विक स्तर पर संकटग्रस्त प्रजातियाँ शामिल हैं। उप-क्षेत्र के भीतर प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

**2.1 लद्दाख**

लद्दाख की पवित्र धरती, जो अब भारत का एक संघ शासित प्रदेश है, दक्षिण में महान हिमालयी श्रेणी, उत्तर में काराकोरम श्रेणी, पश्चिम में पाकिस्तान तथा पूर्व में चीन के तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र के बीच स्थित है। इसकी ऊँचाई का दायरा अत्यंत विस्तृत है। पश्चिमी लद्दाख में 2550 मीटर से लेकर काराकोरम श्रेणी में सासेर कांगड़ी पर 7672 मीटर तक। लद्दाख को सामाजिक-सांस्कृतिक आधार पर चार उपक्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) पश्चिमी ट्रांस-हिमालय, जिसमें निचला सिंधु, सुरु, द्रास और जांस्कर श्रेणियाँ आती हैं,

(ii) मध्य लद्दाख, जिसमें स्तोक तथा समीपवर्ती क्षेत्र और नदियों की घाटियाँ शामिल हैं,

(iii) काराकोरम श्रेणी, जिसमें नुब्रा-श्योक क्षेत्र, दौलत बेग ओल्डी और देपसांग के पठार आते हैं, तथा

(iv) चांगथंग, जिसमें सामद, न्योमा और दुर्बुक ब्लॉकों का समावेश है।

लद्दाख वासियों के लिए पशुपालन आजीविका का एक प्रमुख साधन रहा है। यह क्षेत्र कई महत्त्वपूर्ण पालतू नस्लों का घर है, जैसे पश्मीना बकरी, पुरीक भेड़, याक, बैक्ट्रियन ऊँट, जांस्कर और चुमुर घोड़े जिनका संरक्षण महत्त्व अत्यधिक है और जिन्हें भौगोलिक संकेतक (GI) टैग प्राप्त हैं।

चांगथंग के चरागाहीय वनस्पति स्वरूपों में मरुस्थलीय स्टेपी, झाड़ीदार स्टेपी, आर्द्र अल्पाइन घासभूमियाँ, दलदली घासभूमियाँ और नदी तटीय झाड़ियाँ सम्मिलित हैं। इनमें से मरुस्थलीय स्टेपी सबसे व्यापक है और प्रमुख नदियों के जलोढ़ तटों तथा रेतीले मैदानों पर फैली हुई है। लद्दाख की चरागाहीय वनस्पति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता अल्पाइन दलदली घासभूमियाँ हैं, जो केवल लगभग 2-3% क्षेत्रफल में पाई जाती हैं और इनकी जैव-भार घनता अपेक्षाकृत कम (31.99 gm-2) होती है। फिर भी, ये क्षेत्र विशेषकर शीतकाल में भारी संख्या में पशुधन को सहारा प्रदान करते हैं। यही क्षेत्र ग्रीष्मकाल में काली गर्दन वाले सारस जैसे प्रवासी पक्षियों के लिए प्रजनन स्थल भी हैं (मिश्रा एट ऑल., 2001), अतः इनका संरक्षण महत्त्व अत्यधिक है। चांगथंग और काराकोरम के 5000 मीटर से ऊपर की पथरीली और शिलाखंडीय ढलानों पर 5% से भी कम वनस्पति आच्छादन पाया जाता है। इन क्षेत्रों की विशिष्ट प्रजातियों में *Carex nivalisLeontopodium, Melica, Christolea, Rhodiola, Draba* और *Saussurea* सम्मिलित हैं। आर्द्र और स्थिर ढलानों पर गद्देदार आकार की वनस्पति उगती है, जैसे *Thylacospermum caespitosum, Arenaria bryophylla* तथा *Androsace aizoon* (Rawat & Adhikari, 2005)।

पशुपालक प्रथाओं से अनेक स्थानीय सामाजिक-सांस्कृतिक परंपराएँ और रीतियाँ जुड़ी हुई हैं, जो विभिन्न उप-क्षेत्रों की विशिष्ट पहचान हैं। लद्दाख के चरागाह अनेक अद्भुत और संकटग्रस्त जीव-जंतुओं का निवास भी हैं, जैसे संकटग्रस्त हिम तेंदुआ (*Panthera uncial*), पल्लास बिल्ली (*Otocolobus manul*), तिब्बती भेड़िया (*Canis lupus chanco*), तिब्बती आर्गली (*Ovis ammon hodgsoni*), लद्दाख उरियल (*Ovis vignei vignei*), तिब्बती हिरण (*Pantholops hodsonii*), तिब्बती गजल (*Procapra picticaudata*), जंगली याक, काली गर्दन वाला सारस (*Grus nigricollis*)

और यूरेशियन लिंक्स (*Lynx lynx*)। अब तक ये प्रजातियाँ स्थानीय पशुपालक और कृषि-पशुपालक समुदायों के साथ सह-अस्तित्व में रही हैं।

लद्दाख के चरागाहीय क्षेत्र, कम अवशोषण क्षमता के बावजूद, मृदा कार्बन का एक महत्त्वपूर्ण भंडार हैं। हालाँकि, कार्बन का

है। वर्तमान में, लद्दाख की संघ शासित प्रदेश प्रशासन संरक्षित क्षेत्रों की सीमाओं के युक्तिकरण की प्रक्रिया में है।

### 2.2 हिमाचल प्रदेश के अल्पाइन शुष्क चारागाह

हिमाचल प्रदेश में लाहौल के उत्तर-पूर्वी भाग, पूरे स्पीति उपमंडल तथा किन्नौर जिले के पूह उपमंडल में लगभग

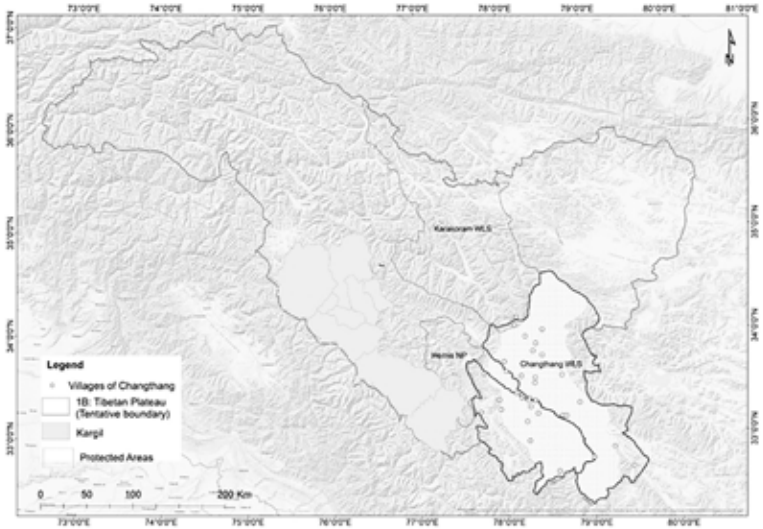


**चित्र 1.** लद्दाख में संरक्षित क्षेत्र नेटवर्क, जहाँ पालतू पशु एवं वन्यजीव दोनों ही व्यापक रूप से पाए जाते हैं।

अवशोषण और भंडारण दर ढलान, दिशा और ऊँचाई के आधार पर काफी भिन्न होती है। सामान्यतः, ऊँचाई और शुष्कता बढ़ने के साथ अवशोषण दर घटती है। लद्दाख से इस संबंध में विस्तृत जानकारी अभी उपलब्ध नहीं है। अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि अल्पाइन घासभूमियाँ, अल्पाइन मरुस्थलीय स्टेपी, घासभूमियाँ और झाड़ीदार स्टेपी पर्याप्त जैवभार संचित करती हैं, तथा अल्पाइन सेज घासभूमियाँ (पीटलैंड्स) कार्बन सिंक के रूप में कार्य करती हैं और विशेष संरक्षण की हकदार हैं।

पूर्वी और उत्तरी लद्दाख का अधिकांश भूभाग संरक्षित क्षेत्र नेटवर्क में आता है (चित्र-1)। इसके परिणामस्वरूप, संरक्षित क्षेत्र प्रबंधन और स्थानीय चरवाहों के बीच संघर्ष बढ़ता जा रहा

12,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में शीत मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र पाया जाता है। भौगोलिक रूप से यह क्षेत्र लद्दाख से जुड़ा हुआ है और विरल वनस्पति आवरण इसकी प्रमुख विशेषता है। परिदृश्य में विस्तृत घाटियाँ (जैसे सार्चू मैदान, ऊपरी स्पीति), पठार (किब्बर) तथा दुर्गम पर्वतीय ढलानें (लाहौल और किन्नौर) सम्मिलित हैं। वनस्पति एवं जीव-जंतुओं की दृष्टि से यह क्षेत्र लद्दाख के तुलनीय है, जहाँ 700 से अधिक संवहनी पौधों की प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें अनेक उच्च मूल्य वाली औषधीय एवं सुगंधित पौधें शामिल हैं।

सामान्यतः यहाँ का वनस्पति आवरण अत्यंत विरल है, जिसमें नदी-तटीय झाड़ियाँ जैसे *Hippophae tibetana ssp- turkistanica* और *Myricaria elegans, Saliu*

प्रजातियाँ, झाड़ीदार स्टेपी, मिश्रित शाकीय घासभूमि तथा कुछ आर्द्रभूमि वाले क्षेत्र शामिल हैं। झाड़ीदार वनस्पति में *Caragana versicolor* और *Krascheninnikovia pungens, Ephedra gerardiana – Loniceraspinosa, Artemisia – Potentilla* प्रमुख रूप से पाई जाती हैं। इस क्षेत्र में कई ऐसे जीव पाए जाते हैं जो रेड लिस्ट में गंभीर रूप से संकटग्रस्त श्रेणी में हैं, जैसे हिम तेंदुआ और हिमालयी भेड़िया। अन्य प्रमुख जीवों में ऊनी खरगोश, हिमालयी भालू (*Ursus arctos*), लाल लोमड़ी, हिमालयी आइबेक्स (*Capra ibex sibirica*), हिमालयी मुरमोट (*Marmota himalayana*), हिमालयी नीली भेड़ (*Pseudois nayaur*), लाल चोंच वाली कौवा, चकोर, हिम चकोर, नीला कबूतर, हिम कबूतर, हिमालयी स्नोकॉक, लामागाइयर, हिमालयी ग्रिफॉन, सुनहरा गरुड़ और रोजफिंच शामिल हैं। सतलुज की खाई (*Sutlej Gorge*) हिमालयी आइबेक्स के लिए एक जैव-भौगोलिक अवरोध का कार्य करती है, जिसके कारण यह प्रजाति इस नदी के पूर्व में नहीं पाई जाती। वहीं तिब्बती जंगली गधा, तिब्बती भेड़, लद्दाख उरियल, तिब्बती हिरण और तिब्बती गजेल जैसी प्रजातियाँ स्पीति क्षेत्र में पूरी तरह अनुपस्थित हैं।

स्पीति को एक महत्वपूर्ण भू-धरोहर स्थल माना जाता है, क्योंकि यहाँ प्रीकैम्ब्रियन युग से लेकर क्रेटेशियस काल तक की तलछटी शृंखलाएँ मिलती हैं, जिनमें क्वार्टजाइट, शेल, चूना पत्थर और कांग्लोमरेट का अद्वितीय मिश्रण पाया जाता है। यह क्षेत्र जीवाश्मों से भी समृद्ध है, जिनमें ब्रैकियोपोड, ट्रायलोबाइट, एमोनाइट, द्विवालक (बाइवाल्व) तथा कुछ कोरल और शैवाल शामिल हैं, जो इसके टेथिस सागर से जुड़े अतीत की गवाही देते हैं।स्पीति क्षेत्र की विशेषता तीन बड़े हिमाच्छादित खंड हैं दृ बारा-शिगरी हिमानी परिसर, उत्तर-पूर्व में ग्या पर्वतमाला तथा दक्षिण-पूर्व में मणिरंग शिखर। इस परिदृश्य का एक भाग, जो वन्यजीवों की दृष्टि से समृद्ध है, ऊपरी स्पीति परिदृश्य(चित्र 2) के रूप में नामित किया गया है, जिसके लिए एक समेकित वन्यजीव प्रबंधन योजना तैयार की गई है (अनाम, 2011)। किन्नौर के चरवाहे 'न्यूक्लियर ट्रांसह्यूमन्स' पद्धति का पालन करते हैं और रक्षाम-चितकुल वन्यजीव अभयारण्य तथा निचली स्पीति के अन्य चारागाहों का उपयोग करते हैं।

### 2.3 उत्तराखंड के अल्पाइन शुष्क चारागाह क्षेत्र

उत्तराखंड का ट्रांस-हिमालय राज्य की उत्तरी सीमा पर मुख्य हिमालय के मेन सेंट्रल थ्रस्ट के ठीक उत्तर में एक संकीर्ण पट्टी का निर्माण करता है। यहाँ चार प्रमुख घाटियाँ पाई जाती हैं जो भूगर्भ और जैव-भौतिक विशेषताओं की दृष्टि से लद्दाख और तिब्बती पठार के ठंडे मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र

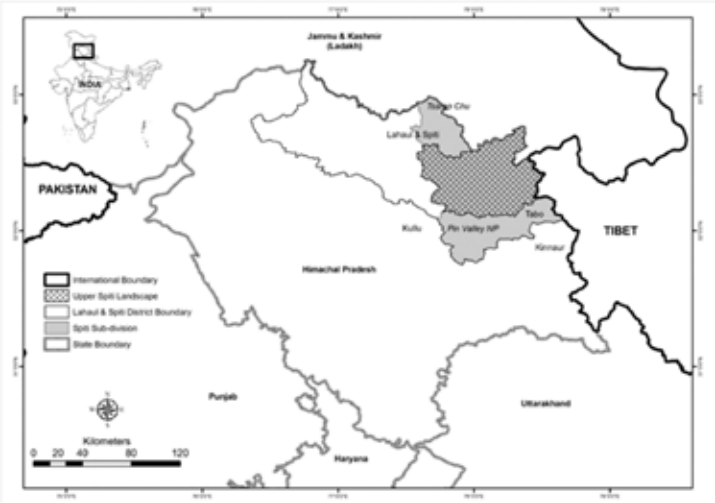


**चित्र 2.** ऊपरी स्पीति परिदृश्य और आस-पास के क्षेत्रों को दर्शाता मानचित्र।

से साम्यता रखती हैं। इनमें उत्तरकाशी जिले की जाड गंगा (जाह्नवी) के ऊपरी जलग्रहण क्षेत्र में स्थित नीलांग घाटी, चमोली जिले मंे अलकनंदा की भीतरी श्रेणियाँ तथा नीति के ऊपरी जलग्रहण क्षेत्र नम अल्पाइन से शुष्क अल्पाइन पारिस्थितिक तंत्रों में क्रमिक संक्रमण को प्रदर्शित करते हैं। चूंकि ये घाटियाँ महान हिमालयी श्रृंखला के बहुत निकट

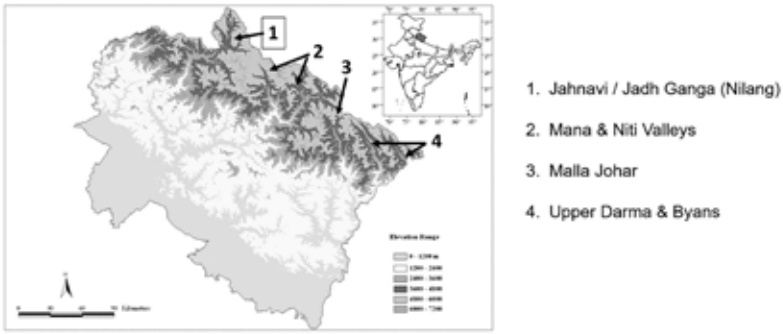


**चित्र 3.** उत्तराखंड की ट्रांस-हिमालयी घाटियाँ।

और गिरथी घाटियाँ, और पिथौरागढ़ जिले की ऊपरी जोहार, दरमा और ब्यास घाटियाँ (चित्र 3) प्रमुख हैं। नीलांग घाटी पश्चिम में किन्नौर से जुड़ी है और तिब्बती पठार के साथ सतत आवास का निर्माण करती है। यह क्षेत्र गंगोत्री राष्ट्रीय उद्यान के अंतर्गत आता है।

अलकनंदा, पश्चिमी धौली और गिरथी नदियों के ऊपरी जलग्रहण क्षेत्र नंदा देवी जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र के उत्तर-पूर्वी भाग का निर्माण करते हैं। भूवैज्ञानिक दृष्टि से ये क्षेत्र दो भिन्न संरचनात्मक श्रृंखलाओं का प्रतिनिधित्व करते हैंकृवैक्रिटा समूह की क्रिस्टलीय शिलाएँ तथा टेथिस हिमालय का मोटा तलछटी अनुक्रम। सुमना से आगे विशेषकर लप्थल और सांघचा की ओर का परिदृश्य अद्भुत भू-आकृतिक विशेषताओं को प्रदर्शित करता है। यहाँ जटिल जीवाश्मधारी परतें पाई जाती हैं जिनमें प्राचीन प्रिकैम्ब्रियन से लेकर मेसोजोइक काल तक के समुद्री जीवाश्म सुरक्षित हैं। यह क्षेत्र अपनी विशिष्टता के कारण राष्ट्रीय स्तर पर 'जियो-हेरिटेज साइट' के रूप में मान्यता का अधिकारी है।

गोरी, पूर्वी धौली (दारमा गंगा) और काली-कूटी नदियों स्थित हैं और नीलांग व पश्चिमी धौली की तुलना में अधिक वर्षा प्राप्त करती हैं, इसलिए इनमें अधिक वनस्पति आवरण और प्रजातियों की अधिक विविधता पाई जाती है (Rawat, 2007)।

उत्तराखंड की सभी चार ट्रांस-हिमालयी घाटियों का उपयोग स्थानीय एवं निचले जिलों से आने वाले प्रवासी पशुपालक समुदायों द्वारा सदियों से किया जा रहा है। इन रेंज लैंड्स में प्रमुख वनस्पति वर्गों में झाड़ीदार स्टेपी, अल्पाइन दलदली घास के मैदान, मिश्रित शाकीय संरचनाएँ, फेल-फील्ड (कुशन जैसी वनस्पति) और उप-हिम-सीमा क्षेत्र में काई-लाइकेन समुदाय शामिल हैं। शुष्क अल्पाइन झाड़ी को आगे 3-4 विशिष्ट समुदायों में बाँटा जा सकता है, जैसे *Caragana gerardiana Artemisia brevifolia, Artemisia – Lonicera spinosa, Dasiphora arbuscula* मिश्रित और *Caragana versicolor – Krascheninnikovia ceratoides*, जिनमें प्रमुख प्रजातियों की प्रचुरता में स्थानीय भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। नदी तटीय झाड़ी निचले स्थानों पर *Myricaria elegans* और *Salix oxycarpa* द्वारा दर्शाई जाती है जबकि ऊँचाई (>4000 मी.) पर *Myricaria prostrata* और *Salix*

*sclerophylla* प्रमुख प्रजातियाँ होती हैं।

ठंडे रेगिस्तानी पारिस्थितिक तंत्रों में ऊपरी और निचले लापथल की साज (*sedge*) घासभूमियाँ सबसे दिलचस्प हैं क्योंकि ये नखलिस्तान जैसी संरचनाएँ बनाती हैं। इनका प्रभुत्व साज और कुछ घासों द्वारा होता है। साज घासभूमियाँ बड़ी संख्या में सहयोगी शाकीय पौधों को भी सहारा देती हैं, जिनमें *Astragalus, Oxytropis, Potentilla* और *Carum carvii* जैसी प्रजातियाँ शामिल हैं। ये घासकी भूमियाँ घरेलू पशुधन के चराई हेतु अत्यधिक पसंद की जाती हैं।

उत्तराखंड ट्रांस-हिमालय, हिमाचल प्रदेश के ठंडे मरुस्थल से जीव-जंतुओं की संरचना के मामले में गहरे संबंध साझा करता है। हालांकि, तिब्बती पठार से सटा होने के कारण कुछ प्रजातियाँ जैसे तिब्बती आर्गली, तिब्बती जंगली गधा और तिब्बती ऊनी खरगोश यहाँ कभी-कभी देखे जाते हैं। यह भी देखा गया है कि कस्तूरी मृग (*Himalayan musk deer*) गिर्थी, गोरी और धौली घाटियों के भीतर काफी गहराई तक पाया जाता है।

**2.4 सिक्किम का पठार**

सिक्किम का पठार भारत की सबसे छोटी जैव-भौगोलिक प्रांतों में से एक है, जिसका भौगोलिक विस्तार लगभग 400 वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ है। यह पठार अत्यंत मनोहर है और समुद्र तल से लगभग 4500 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। त्सो ल्हामु (*Tso Lhamu*) के समीप दो आर्द्र घाटिया, मुगुथांग और यूमेसामडोंग पाई जाती हैं (चित्र 4)। त्सो ल्हामु चारों ओर से मोरेन ढलानों, विस्तृत सेज घास के मैदानों और झाड़ीदार वनस्पति से युक्त है। यहाँ 65 से अधिक छोटे हिमनदीय झीलें हैं, जिनमें सबसे बड़ी गुरुडोंगमार झील है, जिससे तीस्ता नदी का उद्गम होता है। इसके अतिरिक्त, यहाँ एक प्रागैतिहासिक खारे पानी की झील ग्यामत्शोना भी विद्यमान है।त्सो ल्हामु और आसपास की घाटियों के चारागाह अनेक घरेलू पशुओं-विशेषकर याक, भेड़ और घोड़ों-का आवास स्थल हैं। साथ ही, यह क्षेत्र अनेक दुर्लभ एवं गंभीर रूप से संकटग्रस्त वन्य प्राणियों का भी घर है, जिनमें हिम तेंदुआ, पैलस की बिल्ली, तिब्बती भेड़िया, तिब्बती सैंड फॉक्स, तथा विभिन्न खुरदार जीव जैसे-क्यांग की पूर्वी उप-प्रजाति (*Equus kiang oligodon*), तिब्बती गजेल, तिब्बती आर्गली, नीली भेड़, और सुरंग खोदने वाले स्तनपायी जैसे हिमालयी मारमोट और पिका शामिल हैं। ऐतिहासिक रूप से इस पठार में तिब्बती हिरण भी पाया जाता था (*Chanchani et al., 2011*)। इसके अतिरिक्त, यह क्षेत्र पक्षियों से भी समृद्ध है और यहाँ कुछ प्रवासी बत्तखें भी आती हैं।

त्सो ल्हामु की अल्पाइन वनस्पति मुख्यतः बौनी झाड़ियों से बनी है, जिनमें रोडोडेंड्रॉन सिलीएटम, एफेड्रा गेरार्डियाना, मायरिकेरिया प्रोस्ट्राटा, तथा हिप्पोफे तिबेटाना प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त, मिश्रित शाकीय पौध समुदाय तथा सेज घास के विस्तृत मैदान भी मिलते हैं। यहाँ सामान्यतः चटाई की तरह फैलने वाली सेज प्रजातियाँ-कोब्रेशिया रॉयलेआना, कोब्रेशिया स्कोएनॉइड्स और कोब्रेशिया पिम्मिया-प्रचुर मात्रा में पाई जाती हैं।

त्सो ल्हामु के चरवाहा समुदाय, जिन्हें डोकपा कहा जाता है, मूलतः चीन के पड़ोसी तिब्बती स्वायत्त क्षेत्र से आए थे। हालांकि, कुछ परिवार सिक्किम से भी हैं, जिन्होंने केवल पिछले तीन दशकों में याक पालन आरंभ किया है (*Luxom et al., 2022*)।

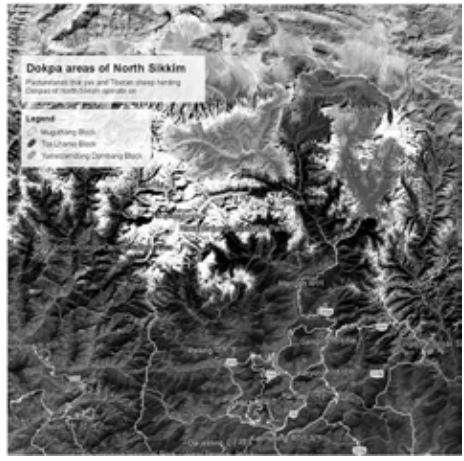


**चित्र 4.** उत्तर सिक्किम में त्सो ल्हामो और आस-पास के क्षेत्रों को दर्शाता मानचित्र।

## 3.0 चरवाहा प्रथाओं में वर्तमान प्रवृत्तियाँ

### 3.1 लद्दाख

लद्दाख में तीन प्रकार की चरवाहा प्रथाएँ पाई जाती हैं-

(i) चांगपा समुदाय (पूर्वी पठार, भारतीय चांगथंग) में घुमंतू और अर्ध-घुमंतू चरवाहापन,

(ii) जांस्कर के कुछ हिस्सों में परमाणु (न्यूक्लियर) स्थानांतरणीय चरवाहापन, तथा

(iii) नचली सिंधु घाटी में स्थायी (कृषि-चरवाहा) प्रथाएँ।

इस क्षेत्र में स्थानांतरणीय चरवाहापन मुख्यतः मई से अगस्त तक द्रास और सुरु घाटियों में बकरवाल और चोपान (पारंपरिक चरवाहे जिन्हें कश्मीरी पशु व्यापारी किराए पर रखते हैं) द्वारा किया जाता है। मध्य लद्दाख और शंकर-चित्कन घाटियों में पशुधन लगभग 10 माह तक चारागाहों में चरते हैं और करीब 2 माह तक बाड़ों में रखे जाते हैं। वहीं, द्रास और सुरु घाटियों में पशुधन केवल 6-7 माह तक ऊँची पर्वतीय ढलानों पर चरते हैं और वर्ष के शेष समय में बाड़ों में रहते हैं। चारे की आवश्यकता पूरी करने के लिए स्थानीय समुदाय घास के मैदान (*हे मेडोज*) बनाए रखते हैं और आंशिक रूप से कृषि अवशेषों का उपयोग भी करते हैं। कई स्थानों पर लोग अपने भूमि प्रबंधन में कृषि-वानिकी-चरवाहा प्रणाली (*एग्री-सिल्वी-पैस्टोरल सिस्टम*) अपनाते हैं। इस क्षेत्र मंश बागवानी में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई है, साथ ही साथ लकड़ी, ईंधन और अन्य घरेलू सामानों के लिए पॉपलर और विलो वृक्ष भी उगाए जाते हैं।

चांगपा समुदाय याक, भेड़, बकरी और घोड़े पालते हैं तथा पशु उत्पादों की सतत कटाई करते हैं। वे अपनी वार्षिक उपज का एक हिस्सा संबंधित गोम्पा को कर के रूप में देते हैं, एक हिस्सा स्वयं उपभोग करते हैं और एक अन्य हिस्से को अनाज एवं आवश्यक वस्तुएँ (जैसे *खाद्यान्न, चाय* और *नमक*) प्राप्त करने हेतु अदला-बदली (*बार्टर*) करते हैं। विभिन्न पशुधन प्रजातियों में से चांगरा अथवा पश्मीना बकरियाँ सबसे मूल्यवान मानी जाती हैं क्योंकि वे उच्च गुणवत्ता का ऊन देती हैं। चांगपा लोग चारागाहों को शीतकालीन और ग्रीष्मकालीन चरागाहों में बाँटकर युगों पुरानी घूर्णन चराई प्रणाली (रोटेशनल ग्रेजिंग सिस्टम) के अनुसार चराई का प्रबंधन करते हैं।

लद्दाख की चरवाहा और कृषि-चरवाहा समुदायों ने अब तक आत्म-लगाए हुए घूर्णन चराई के नियमों और पशुपालकों के बीच चारागाहों के आवंटन के जरिए चरागाहों का सतत उपयोग सुनिश्चित किया था। प्रत्येक चरवाहा समूह लोकतांत्रिक रूप से एक प्रमुख का चुनाव करता है, जिसे गोबा (चांगथंग और लेह के अन्य भागों में) या मुकदम-नंबरदार (जांस्कर, सुरु और द्रास घाटियों में) कहा जाता है। गोबा का कार्यकाल तीन वर्ष का होता है और वह प्रवास की तारीख, जल उपयोग, आगमन एवं प्रस्थान की तारीखें, प्रत्येक चरागाह में रहने की अवधि और अन्य कृषि व चरवाहा प्रणालियों से जुड़े निर्णय लेता है। चांगथंग में गोबा का चुनाव आज भी पारंपरिक तरीके से होता है जिसमें पासा फेंककर प्रमुख चुना जाता है। गोबा चुने जाने के बाद एक सलाहकार समिति (आमतौर पर पुरुष चरवाहों की) गठित की जाती है जो गोबा की सहायता करती है। निचली घाटियों और जांस्कर में गाँवों का अपना चरागाह आवंटन और घूर्णन प्रणाली है। उदाहरण के लिए, जांस्कर में याक, जो और जोमो (याक-गाय संकर) जुलाई की शुरुआत में अल्पाइन चारागाहों (डोक्सा) पर ले जाए जाते हैं और अक्टूबर के अंत तक गाँव लौट आते हैं। ये चरवाहे (डोक्सपा) प्रवास का एक निश्चित पैटर्न अपनाते हैं, हालांकि उनके प्रस्थान की तिथि मुकदम तय करता है। डोक्सपा चरवाहों के पास परिभाषित चराई क्षेत्रों पर विशिष्ट अधिकार होते हैं। वे लगभग 10-15 याक अपने पास रखते हैं और अन्य ग्रामीणों के याक भी साथ ले जाते हैं। बदले में उन्हें दूध से बने उत्पादों (जैसे घी और सूखा पनीर 'छुरपे') का 1/3 हिस्सा रखने का अधिकार होता है। इसके अलावा याक पालन के लिए कोई मौद्रिक भुगतान व्यवस्था नहीं होती। समय के साथ, और चारागाहों के क्षरण के चलते, ये सामुदायिक संस्थाएँ अब सक्रिय चरागाह प्रबंधन, क्षेत्रीय विभाजन योजनाओं और घूर्णन चराई कार्यक्रमों में भाग लेने में सक्षम नहीं रही हैं।

लद्दाख में वर्तमान में पशुधन की अनुमानित संख्या

6,92,396 (2021 पशुधन गणना) है। आँकड़ों से पता चलता है कि औसतन प्रत्येक ग्रामीण परिवार के पास 15-20 पशुधन होते हैं। प्रमुख पाली जाने वाली प्रजातियों में बकरी, भेड़, याक, याकदृगाय संकर (जो और जोमो), घोड़े, खच्चर और गधे शामिल हैं। लेह और कारगिल जिलों में पशुधन पर सामान्य आँकड़े निम्न तालिका (तालिका 1) में प्रस्तुत हैं।

लद्दाख में पशुधन की संख्या में उतार-चढ़ाव देखा गया है। चांगथांग में अत्यधिक कठोर सर्दियों के कारण पूर्व में पशुधन की भारी मृत्यु हुई थी, जबकि अन्य क्षेत्रों में इसके पीछे

**तालिका 1: लद्दाख का क्षेत्रीय आँकड़ा और पशुधन जनसंख्या (पशुधन जनगणना 2020-21 के अनुसार) (स्रोत: लाहुल और कारगिल जिलों के सांख्यिकीय पुस्तिकाएँ, LAHDC, लद्दाख)।**

| SN | Particulars | Leh | Kargil |
|---|---|---|---|
| 1 | Geographical Area | 45000 $km^2$ | 14036 $km^2$ |
| 2 | Total population | 133487 | 140802 |
| 3 | Rural Population | 87816 | 124464 |
| 4 | Area under agriculture | 105.42 $km^2$ | 114.54 $km^2$ |
| 5 | Sheep population | 98611 | 145734 |
| 6 | Goats | 198787* | 135382 |
| 7 | Cattle | 35839 | 48362 |
| 8 | Dzo / Dzomos | 34174 | 16607 |
| 9 | Yaks | 20302 | 6300 |
| 10 | Equids | 4420 | 5570 |
| 11 | Camels | 298 | - |
| 12 | Rabbits | 80 | - |
| 13 | Poultry | 20829 | 65439 |

* 2020-21 की जनगणना के अनुसार पश्मीना बकरियों की संख्या 2,22,682

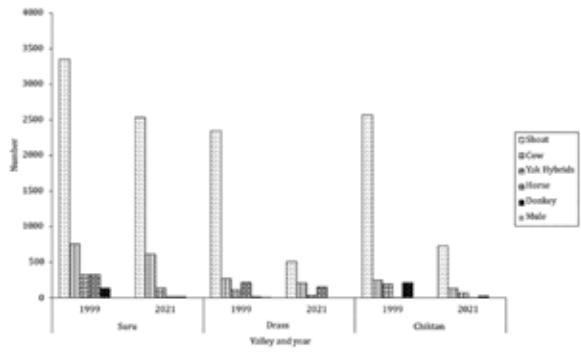


**चित्र 5.** कारगिल युद्ध से पहले और बाद में कारगिल की तीन घाटियों में पशुधन की आबादी में गिरावट (स्रोत रज़ा, 2024)

सामाजिक-आर्थिक कारण जिम्मेदार हैं। उदाहरण के लिए, कारगिल जिले में 1999 के भारत-पाक संघर्ष के बाद पशुधन की संख्या में भारी गिरावट आई (चित्र 5य रजा, 2024)।

### 3.2 हिमाचल प्रदेश

हिमाचल की ट्रांस-हिमालयी श्रृंखलाओं में स्थानीय समुदाय मुख्यतः कृषि-पशुपालक (*एग्रो-पाश्चरल*) हैं और आसपास के चरागाहों में चराई के अधिकार रखते हैं। कुछ क्षेत्रों में वे अपने चरागाहों को आस-पास के इलाकों, जैसे-निचला किन्नौर, चंबा और भरमौर से आने वाले अर्ध-यायावर पशुपालकों को पट्टे पर दे देते हैं। स्थानीय लोग बकरियां, भेड़ें, याक, गाय, ड्जो और ड्जोमो (याक और गाय के संकर), घोड़े तथा गधों का पालन करते हैं।

पशुपालन विभाग, लाहौल और स्पीति के अनुसार, वर्तमान में इस जिले में लगभग 65,000 पालतू पशु हैं और लगभग उतनी ही संख्या में पशु गर्मियों में चराई के लिए आस-पास के जिलों से यहाँ आते हैं। हाल ही में किए गए एक अध्ययन (सिंह एवं अन्य, 2020) में पाया गया है कि भेड़ और बकरियों की संख्या में गिरावट आई है, जिसका मुख्य कारण,मानव संसाधन की कमी, सर्दियों में चारे की कमी और आजीविका के अन्य विकल्पों (जैसे होम-स्टे पर्यटन और नगदी फसलों की खेती) की उपलब्धता है। सर्दियों में पशुओं को खूँटे पर चारा खिलाने के लिए स्थानीय लोग कृषि भूमि में पर्याप्त मात्रा में चारा उगाते हैं, जिसमें गेहूँ भी शामिल है।

हिमालयी क्षेत्र के अन्य हिस्सों की तरह यहाँ भी नई पीढ़ी की शिक्षा पर अधिक बल दिया जा रहा है और उन्हें पारंपरिक पशुपालन से संबंधित ज्ञान का कम अनुभव मिल रहा है। वास्तव में, इन जिलों के अधिकांश हिस्सों में अब पशुपालन पंजाब और नेपाल से आने वाले प्रवासी मजदूरों पर निर्भर हो गया है।

### 3.3 उत्तराखंड

उत्तराखंड की ट्रांस-हिमालयी घाटियों का उपयोग गर्मियों में स्थानीय और प्रवासी पशुपालक समुदायों द्वारा चरागाहों के रूप में किया जाता है। ये समुदाय राज्य के निचले जिलों से तथा आंशिक रूप से हिमाचल प्रदेश से यहाँ आते हैं। 1962 से पहले, स्थानीय समुदाय (*भोटिया*) इन घाटियों में बड़े पैमाने पर अर्ध-यायावर पशुपालन करते थे और तिब्बत के साथ व्यापार भी करते थे। जाड़, मार्चा, टोल्छा, शौका और रंग्स जैसी जातियाँ याक, भेड़ और बकरियों का उपयोग सामान ढोने और सीमा-पार व्यापार में करती थीं। दारमा और ब्यास घाटी के रंग्स को नेपाल में मुक्त व्यापार और चराई का अधिकार भी प्राप्त था (पांडेय एवं अन्य, 2016)।

लद्दाख और स्पीति के विपरीत, उत्तराखंड ट्रांस-हिमालय के अल्पाइन गाँवों के स्थानीय समुदाय सर्दियों में निचले इलाकों में अपने स्थायी निवासों में लौट जाते हैं, जिससे ऊँचे चारागाह सर्दियों में पशु-चराई से मुक्त रहते हैं। वर्तमान में नीलांग घाटी गंगोत्री राष्ट्रीय उद्यान के अंतर्गत आती है और वहाँ कोई स्थायी गाँव नहीं है। फिर भी, लगभग 10-15,000 भेड़ और बकरियाँ (जो जाध समुदाय, उत्तरकाशी और किन्नौर की हैं) हर गर्मियों में इस घाटी में चरने आती हैं।

ऊपरी अलकनंदा जलागम, सरस्वती घाटी, नीति और गर्थी घाटी (नन्दा देवी बायोस्फीयर रिजर्व का उत्तरी भाग) में चमोली जिले के चरवाहों की 20,000 से अधिक भेड़ और बकरियाँ चरने आती हैं। हालाँकि, उत्तराखंड के पशुपालन विभाग के अनुसार राज्य में भेड़ और बकरियों की कुल आबादी क्रमशः लगभग 2.84 लाख और 13.71 लाख है, लेकिन एक अनुमान के अनुसार अल्पाइन शुष्क चारागाहों में चरने आने वाली भेड़ और बकरियों का अनुपात क्रमशः 65% और 35% है।

भेड़ें ऊन और मांस दोनों के लिए पाली जाती हैं, जबकि बकरियाँ मांस और कम मात्रा में उनकी मोटी ऊन (लंबे बाहरी बाल) के लिए, जिससे रस्सियाँ और हस्तशिल्प बनाए जाते हैं। घोड़े और खच्चर क्रमशः प्रवासी पशुओं की कुल संख्या का 1% और 0.2% हैं और मुख्यतः बोझढोने में उपयोग किए जाते हैं। प्रत्येक चरवाहा समूह अपने पशुओं की सुरक्षा के लिए तीन से चार कुत्ते रखता है, ताकि उन्हें हिम तेंदुए, तेंदुआ, लाल लोमड़ी और आवारा कुत्तों से बचाया जा सके।

स्थानीय समुदाय (वन पंचायत के माध्यम से) प्रत्येक पशु पर एक मौसम के लिए ₹5 से ₹6 कर और प्रत्येक अश्व पर ₹70

कर लगाता है। ऊपरी जोहार, दारमा और ब्यास घाटियों में पिछले 4-5 दशकों में बड़ा बदलाव आया है, क्योंकि अब केवल 10-15% परिवार ही अपनी गर्मियों की बस्तियों में जाते हैं और उनमें से बहुत कम के पास भेड़ और बकरियाँ हैं। फिर भी, इन घाटियों में हर साल लगभग 15-20,000 भेड़ और बकरियाँ आती हैं, जो जिले के निचले इलाकों के चरवाहों तथा हिमाचल प्रदेश के कुछ गद्दी चरवाहों की होती हैं। यह व्यवस्था नीति घाटी जैसी ही है।

### 3.4 सिक्किम

पशुपालन विभाग के अभिलेखों के अनुसार, वर्तमान में उत्तर सिक्किम में डोक्पा समुदाय के 41 परिवार रहते हैं जिनके पास लगभग 3400 पालतू पशु हैं। ये परिवार तीन क्षेत्रों के चारागाहों का उपयोग करते हैं, मुगुथांग (10 परिवार, लगभग 1000 याक), त्सो ल्हामो (13 परिवार, 12 याक और 200 भेड़ें), और युमेसामडोंग (18 परिवार, लगभग 1000 याक)।

मुगुथांग के डोक्पा अपने याकों को सर्दियों में नाकु घाटी ले जाते हैं। दिलचस्प रूप से, त्सो ल्हामो के डोक्पा कठोर सर्दियों में ऊँचे पठार की ओर चले जाते हैं क्योंकि वहाँ अपेक्षाकृत कम हिमपात होता है। यहाँ के याक तिब्बती नस्ल (*Bos grunniens*) के हैं और भेड़ भी तिब्बती नस्ल (*Ovis aries*) की है, जिन्हें स्थानीय रूप से भेरलुंग कहा जाता है।

इनके अतिरिक्त, लाचेन और लाचुंग घाटियों के लोग भी सिक्किम पठार पर लगभग 2000 पशु, जिनमें अधिकांश याक होते हैं, चराने लाते हैं। हालाँकि, पश्चिमी हिमालय के अन्य भागों की तरह त्सो ल्हामो क्षेत्र में भी पशुओं की संख्या, विशेषकर भेड़ों की, पिछले 20-25 वर्षों में लगभग 2000 से घटकर केवल 200 रह गई है। कई डोक्पा परिवार त्सो ल्हामो से पलायन कर गंगटोक और सिक्किम के निचले हिस्सों में बस गए हैं।

वर्तमान में यह पठार स्थायी रूप से सुरक्षा बलों (भारतीय सेना) द्वारा आबाद है और प्रतिवर्ष लगभग 17 लाख पर्यटक यहाँ आते हैं (*India Tourism Statistics Report, 2023*)।

## 4.0 प्रमुख मुद्दे और चुनौतियाँ

### 4.1 चराई प्रथाओं में तीव्र परिवर्तन और पारंपरिक ज्ञान प्रणाली का ह्रास

क्षेत्र में पारंपरिक चरवाहा प्रथाएँ और पशुपालन की संरचना तेजी से बदल रही है (*Dolphus 2013; Angmo et al., 2016; Pandey et al., 2016*)। विभिन्न राज्यों के पशुपालकों से अनौपचारिक बातचीत से स्पष्ट होता है कि सभी उप-क्षेत्रों की युवा पीढ़ी पशुपालक जीवन को आकर्षक नहीं मानती। उदाहरण स्वरूप, चांगथंग के कई चांगपा परिवारों ने पशुपालन छोड़कर लेह की ओर पलायन कर लिया है। स्पीति और उत्तराखंड की आंतरिक घाटियों में कृषि-पशुपालक समुदाय अपने बच्चों को शहरों में पढ़ाना और उन्हें श्वेतपोश नौकरियों में देखना पसंद करते हैं, बजाय इसके कि वे चरवाहे या किसान बने रहें। कश्मीर और हिमाचल प्रदेश के अन्य हिस्सों में सम्पन्न पशुपालक प्रायः गरीब चरवाहों को अपने पशु पालने के लिए रखते हैं। नीलांग घाटी में किए गए एक अध्ययन में हमने पाया कि जाड़ समुदाय की नई पीढ़ी अपने चारागाहों में पाए जाने वाले पौधों के 70% से अधिक स्थानीय नाम भूल चुकी है (व्यक्तिगत अवलोकन)।

पारंपरिक रूप से, लद्दाख के कृषि-पशुपालक और पशुपालक समुदायों ने फसलों, चारागाहों और पशुओं का प्रबंधन एक संतुलित श्रम-विभाजन और वस्तु-विनिमय प्रणाली के माध्यम से किया था। ल्हांगदे, बेस, बॉन्गलुड, रारेस और बारेस जैसी सेवा-विनिमय प्रणालियाँ सुव्यवस्थित थीं। किंतु वैश्वीकरण, नकद अर्थव्यवस्था और बदलती जलवायु के दबाव में ये समुदाय तीव्र सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन से गुजर रहे हैं। इसका प्रभाव कृषि और पशुपालन प्रथाओं दोनों पर स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जहाँ बाजार तक पहुँच आसान है, वहाँ स्थानीय किसान पारंपरिक फसलों को छोड़कर नगदी फसलों जैसे मटर, आलू और अन्य मौसम-बाह्य सब्जियों की खेती करने लगे हैं। बौद्ध बहुल क्षेत्रों में प्राइमोजेनिचर (बड़े बेटे को सम्पत्ति मिलना), मठवासी ब्रह्मचर्य और बहुपतित्व जैसी परंपराओं ने भूमि के विखंडन और जनसंख्या वृद्धि को रोकने में योगदान दिया। इसके अलावा, लद्दाख के कई इलाकों में पशुपालक समुदायों का पलायन शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों की ओर हुआ है।

इसका परिणाम यह हुआ कि नई पीढ़ी में पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान का ह्रास हो रहा है और कृषि-पशुपालक तथा पशुपालक प्रणालियों के बीच सदियों पुराना सहजीवी संबंध टूट रहा है (*Singh et al., 2020*)।

**4.2 चारागाहों का ह्रास और संकुचन**

अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि कई अल्पाइन शुष्क चारागाह, विशेष रूप से वे क्षेत्र जहाँ पूरे वर्ष स्थायी पशु-चराई होती है, समय के साथ ह्रासग्रस्त हो गए हैं। इसके परिणामस्वरूप प्राथमिक उत्पादकता में कमी, चारे की कमी तथा प्रजातीय विविधता का ह्रास देखने को मिला है (*Tewari et al., 2016; Raza, 2024*)।

**चारागाहों के ह्रास के प्रमुख कारण हैं:**

(i) पशुओं की अत्यधिक संख्या (over stocking),

(ii) ईंधन हेतु झाड़ियों और गोबर का संग्रहण,

(iii) सड़क निर्माण से होने वाले मिट्टी के कटाव के कारण आर्द्र घासभूमियों का गाद से भरना,

(iv) आर्द्र चारागाहों और जलस्रोतों के समीप पर्यटन शिविरों की स्थापना।

लद्दाख के चारागाहों में ईंधन हेतु अत्यधिक लकड़ी कटाई और झाड़ीदार-स्टेप को मरु-स्टेप में बदलना भी एक गंभीर समस्या है (*Uniyal et al., 2005*)। लद्दाख के चारागाहों में पाई जाने वाली कुछ प्रमुख झाड़ियाँ जैसे- *Caragana versicolor, Ephedra gerardiana, Lonicera spinosa, Krascheninnikovia ceratoides, K. pungens* तथा *Artemisia* की प्रजातियाँ चारे के साथ-साथ महत्वपूर्ण पारिस्थितिक भूमिका भी निभाती हैं। यह स्थापित किया गया है कि *Caragana versicolor* और *Krascheninnikovia pungens* इन क्षेत्रों की *keystone species* हैं, जो ढलानों पर मिट्टी के कटाव को रोकती हैं तथा कई स्वादिष्ट चारे वाली प्रजातियों को संरक्षण प्रदान करती हैं, जो पालतू एवं वन्य खुरदार जीवों (*ungulates*) दोनों के लिए महत्वपूर्ण हैं। इन झाड़ियों को हटाने से चारागाहों का त्वरित ह्रास होता है-जैसे प्राथमिक उत्पादकता में कमी, ह्यूमस और पोषक तत्वों का नाश तथा मिट्टी के कटाव के अलावा, लद्दाख के कई ऊँचाई वाले चारागाह औषधीय एवं सुगंधित पौधों के अवैध दोहन का भी सामना कर रहे हैं। विशेषकर अत्यधिक ऊँचाई वाले *sub-nivalzones* में कंद और भूमिकंद वाली बारहमासी जड़ी-बूटियों की खुदाई से सतही मिट्टी तथा महत्वपूर्ण सूक्ष्मजीवी परत (*microbial crust*) का ह्रास हो रहा है, जो स्थानीय वनस्पतियों की पुनः स्थापना के लिए अत्यंत आवश्यक है।

चरवाहों के अनुसार, चांगथंग क्षेत्र में ह्रास के लक्षणों में शामिल हैं। घासभूमि के टुकड़ों का सूखना, कीट संक्रमण तथा अरुचिकर प्रजातियों जैसे लंटांग (*Physochlaina praealta*) और त्सेर्मा (*Cirsium arvense*) की अधिकता। चूँकि यह क्षेत्र ठंडा शुष्क है और प्राथमिक उत्पादकता बहुत कम है, लद्दाख के चरवाहे हमेशा से चारे की कमी का सामना करते आए हैं। एक अनुमान के अनुसार लद्दाख क्षेत्र में 69.44% चारा घाटा है, अर्थात् केवल 1.43 लाख मीट्रिक टन चारा उपलब्ध है जबकि आवश्यकता 4.68 लाख मीट्रिक टन (सूखा पदार्थ आधार पर) है (पशुपालन विभाग, लद्दाख केंद्र शासित प्रदेश)। अनुमानतः, चारे की कमी के कारण दुबले मौसम में पशुओं का 20-30% शारीरिक भार घट जाता है। हालाँकि, लाहौल और स्पीति में चारे की उपलब्धता, आवश्यकता और चारे की कमी से होने वाले वजन ह्रास के नवीनतम आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। हाल के वर्षों में, स्पीति और लद्दाख के चारागाह पर्यटन के लोकप्रिय स्थल बन गए हैं, विशेष रूप से करिश्माई वन्यजीव जैसे हिम तेंदुआ और मनमोहक परिदृश्य के कारण। इस पर्यटन वृद्धि का एक प्रमुख कारण है सड़क नेटवर्क सहित तीव्र बुनियादी ढाँचे का विकास, जिसने इन नाजुक परिदृश्यों और चारागाहों पर भारी दबाव डाला है। पूर्वी लद्दाख में कई पशुपालक परिवार अब होमस्टे व्यवसाय अपनाने लगे हैं और झाड़ीदार घासभूमियों को इमारतों में परिवर्तित कर रहे हैं, जिससे चारागाहों का और अधिक ह्रास और संकुचन हो रहा है।

**4.3 मानव-वन्यजीव संघर्ष**

लद्दाख और स्पीति के चारागाहों में वन्य मांसाहारी जीवों द्वारा पशुधन का शिकार एक उभरती हुई समस्या है। प्रमुख प्रजातियाँ

जो इसमें शामिल हैं-हिम तेंदुआ, भूरे भालू और तिब्बती भेड़िया। पशुधन की किसी भी हानि का अर्थ है चरवाहों के लिए प्रत्यक्ष आर्थिक नुकसान, विशेषकर तब जब हिम तेंदुआ या भेड़िये सामूहिक रूप से बड़ी संख्या में पशुओं को मार देते हैं। यह देखा गया है कि ऐसे संघर्ष विशेषकर उन चारागाहों में अधिक होते हैं जो ह्रासग्रस्त हैं, जहाँ मांसाहारी जीवों के लिए वन्य शिकार बहुत कम है, या जब पशुओं को बिना निगरानी के चारागाहों में छोड़ दिया जाता है। वन्यजीव संरक्षण विभाग ने कुछ संरक्षण एनजीओ की मदद से स्थानीय समुदायों के साथ मिलकर शिकारी-रोधी बाड़े (*predator & proof corrals*) बनाने का काम किया है, जैसे कि सुरु घाटी के रंगदुम क्षेत्र और हेमिस राष्ट्रीय उद्यान के पास रोंग घाटी में। इस संदर्भ में, सामुदायिक आधारित पशुधन बीमा योजनाएँ बहुत प्रभावी साबित हुई हैं, क्योंकि इनसे पशुधन के शिकार की स्थिति में तेजी से मुआवजा दिया जा सकता है, जिससे मांसाहारी जीवों की प्रतिशोधात्मक हत्या की संभावना कम हो जाती है। कारगिल क्षेत्र में वन्य मांसाहारियों द्वारा पशुधन के शिकार की सामान्य प्रवृत्ति को चित्र 6 में दर्शाया गया है।

खुरदार जीवों की आबादी ऐतिहासिक समय से ही वर्ष दर वर्ष चारागाह उत्पादकता और शीत ऋतु की कठोरता पर निर्भर करते हुए बदलती रही है और कोई भी वैज्ञानिक अध्ययन यह सिद्ध नहीं करता कि उनकी कम संख्या के कारण जंगली खुरदार जीव चारागाहों को समाप्त कर रहे हैं। यह भी इंगित किया गया है कि चांगथांग में जंगली खुरदार जीवों की कुल आबादी घरेलू पशुओं की आबादी का मात्र एक-दसवां है। अतः चारागाहों के स्वास्थ्य की सहभागी बहाली और निगरानी, साथ ही जंगली और घरेलू खुरदार जीवों की प्रतिक्रिया का आकलन करना वांछनीय होगा।

### 4.4 जलवायु परिवर्तन और चारागाहों में जल संसाधनों की कमी

भारतीय ट्रांस-हिमालय जलवायु परिवर्तन के प्रति अनुपातहीन रूप से संवेदनशील है। इस क्षेत्र में ग्रीष्मकालीन वर्षा और औसत तापमान में वृद्धि हुई है। पशुपालकों के अनुसार हाल के वर्षों में शीतकालीन महीनों में अधिक अनिश्चितता और

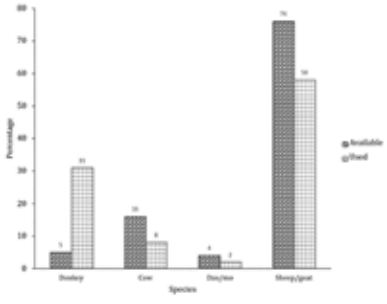


**चित्र 6.** कार्गिल में 2020-2022 के दौरान जंगली मांसाहारी जीवों एवं घरेलू पाली जाने वाली पशु आबादी और उनके विनाश का प्रतिशत (रजा, 2024)।

पूर्वी लद्दाख (*चांगथांग*) के पशुपालक यह मानते हैं कि जंगली शाकाहारी जैसे तिब्बती जंगली गधा और नीली भेड़ (*ब्लू शीप*) उनकी शीतकालीन चारागाहों को समाप्त कर देते हैं, जिसके कारण घरेलू पशुओं के लिए चारे की कमी हो जाती है। हालांकि यह ध्यान देने योग्य है कि इन चारागाहों में घरेलू और जंगली

चरम मौसम की घटनाओं में वृद्धि हुई है। इसका सीधा प्रभाव चारे के उत्पादन और पश्मीना ऊन की गुणवत्ता पर पड़ता है। चांगपा समुदाय के अनुसार, अत्यधिक ठंड और तेज हवाएँ उच्च गुणवत्ता वाली बारीक पश्मीना ऊन के निर्माण के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार, गर्म होती सर्दियाँ लद्दाख और

कश्मीर के तीन लाख से अधिक निवासियों की आजीविका को प्रभावित कर सकती हैं। उच्च ऊँचाई वाले दलदली चारागाह सामान्यतः चांगथांग पठार और सिंधु नदी के किनारों पर स्थित होते हैं। ये जैव विविधता के महत्त्वपूर्ण हॉटस्पॉट हैं और चारागाहों की जलविज्ञान और पारिस्थितिकी को आकार देने में अहम भूमिका निभाते हैं। दलदली चारागाह कई स्थानिक और संकटग्रस्त प्रजातियों का आवास हैं, जिनमें संकटग्रस्त काली गर्दन वाला सारस (*Grus nigricollis*) शामिल है। दलदली चारागाहों के क्षरण का एक कारण झरनों के पानी को कृषि, पर्यटन और अन्य शिविरों की ओर मोड़ना है।

ऊँची घाटियों और हिमपोषित धाराओं के निचले क्षेत्रों के कृषि-पशुपालक गाँव आंशिक रूप से कृषि उत्पादन पर निर्भर रहते हैं। 3500 मीटर से नीचे स्थित गाँवों में खूबानी, आलूबुखारा, सेब और कई प्रकार की विलो (*Salix spp.*) और पॉपलर (*Populus spp.*) जैसी फलदार व वृक्ष प्रजातियाँ भी उगाई जाती हैं। सामान्यतः इन गाँवों को सिंचाई हेतु पानी ऊपरी क्षेत्रों की हिमपोषित धाराओं और नालों से मिलता है। किसान अक्सर अपनी खेती की भूमि की सिंचाई के लिए ढलानों के साथ जल-नहरें बनाते हैं। कई बार कृषि के लिए अत्यधिक जल मोड़ने से आर्द्र चारागाहों तक जल आपूर्ति कम हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप चारागाहों का क्षरण होता है।

### 4.5 रेखीय विभागों के बीच तालमेल की कमी और चारागाहों पर सक्षम नीतियों का अभाव

कई क्षेत्रों में वन एवं वन्यजीव प्रबंधन, पशुपालन, पर्यटन, ग्रामीण विकास और रक्षा जैसे विभागों के बीच पर्याप्त समन्वय और अभिसरण नहीं रहा है। परिणामस्वरूप विभिन्न विभाग अक्सर परस्पर विरोधी कार्य करते हैं और परिदृश्य स्तर पर संरक्षण और विकास के लक्ष्य अधूरे रह जाते हैं। इससे संघर्ष बढ़ता है और चारागाह, जल एवं अन्य जैव संसाधनों में गिरावट आती है। संवाद और सहभागी प्रक्रियाओं की कमी से पशुपालक भी संरक्षण कार्यक्रमों से विमुख हो जाते हैं। सतत विकास लक्ष्यों की प्राप्ति, जैव विविधता संरक्षण के मुख्यधारा में लाने और नवाचार आधारित आजीविकाओं के संवर्द्धन हेतु सहभागी नियोजन प्रक्रिया की व्यापक अनुशंसा की गई है। यह प्रभावी अभिसरण, ज्ञान वृद्धि और उन्नत सूक्ष्म-नियोजन के माध्यम से संभव है। रेखीय विभागों के अभिसरण पर कई एजेंसियों द्वारा भी पर्याप्त बल दिया गया है।

## 5.0 प्रबंधन रणनीतियाँ

### 5.1 क्षतिग्रस्त चारागाहों का पारिस्थितिक पुनर्स्थापन

क्षरण की गंभीरता, चराई व्यवस्था, पशुधन घनत्व तथा स्थलाकृति के आधार पर चारागाहों के पुनर्स्थापन हेतु दो दृष्टिकोण अपनाए जा सकते हैं, निष्क्रिय (Passive) और सक्रिय (Active) पुनर्स्थापन।

निष्क्रिय पुनर्स्थापन उन चारागाहों में अपनाया जा सकता है जहाँ केवल वनस्पति आवरण घटा हो, किंतु मृदा संरचना यथावत् बनी हो। ऐसे चारागाहों में प्राकृतिक वनस्पति की पुनः स्थापना अपेक्षाकृत सरल होती है, विशेषकर जब यह प्रक्रिया स्थानीय पशुपालक समुदाय की सहभागिता से संचालित हो। इसके लिए आवश्यक है कि अत्यधिक जैविक दबाव को कम किया जाए तथा 4-5 वर्षों तक पशुधन को अस्थायी रूप से चारागाहों से बाहर रखा जाए। भारतीय ट्रांस-हिमालय से ऐसे अनेक सफल उदाहरण प्राप्त होते हैं। उदाहरण स्वरूप, उत्तराखंड स्थित नंदा देवी जैवमंडल आरक्षित क्षेत्र के निति घाटी में समुदाय-आधारित पुनर्स्थापन कार्यक्रम। यहाँ निति ग्राम की वन पंचायत ने एक पहाड़ी ढलान को पूर्ण संरक्षण देकर पुनर्जीवित करने का निर्णय लिया। इस ढलान पर पशुधन चराई तथा गैर-काष्ठ वनोपज के दोहन पर वृद्धि ऋतु के दौरान पूर्ण रोक लगाई गई। ऋतु के अंत में मात्र 2-3 दिनों तक चारे के संग्रह की अनुमति दी जाती है। अन्य गैर-काष्ठ वनोपज, विशेषकर उच्च मूल्य वाली औषधीय वनस्पतियों का संग्रह टिकाऊ ढंग से किया जाता है और यह सभी ग्रामीणों में समान रूप से बाँटा जाता है, जबकि पर्याप्त मात्रा में वनस्पतियाँ पुनः वृद्धि हेतु संरक्षित छोड़ी जाती हैं।

सक्रिय पुनर्स्थापन उन स्थलों पर आवश्यक है जो अत्यधिक क्षतिग्रस्त हों, जहाँ वनस्पति आवरण पूर्णतः नष्ट हो गया हो तथा मृदा अपरदन (शीट और गली अपरदन) स्पष्ट दिखाई दे। इस प्रक्रिया का पहला चरण है, अत्यधिक अपक्षय से बने नालों और गली संरचनाओं को रोकना। इसके पश्चात् देशज प्रजातियों

का रोपण अथवा बीजारोपण किया जाता है। इसके लिए नर्सरी निर्माण तथा अग्रिम योजना की आवश्यकता होती है। पौध प्रतिरोपण अथवा राइजोम का सर्वोत्तम स्रोत वे स्थल होते हैं जहाँ ताजी सड़क कटाई चल रही हो और स्थलाकृति तुलनीय हो। यह प्रक्रिया समय, धन और श्रम की दृष्टि से अधिक गहन होती है।

यह भी ध्यान देने योग्य है कि पर्वतीय ढलानों पर जहाँ स्वाभाविक रूप से विरल वनस्पति आवरण हो अथवा स्थलाकृति नग्न/अपक्षयित हो और जो 'बंजर भूमि' जैसी प्रतीत होती हो, उन्हें अनिवार्य रूप से क्षतिग्रस्त चारागाहों की श्रेणी में नहीं रखा जाना चाहिए। निस्संदेह वे क्षेत्र जो हाल ही में जल स्रोतों के मोड़, भौतिक संरचना विकास अथवा महत्त्वपूर्ण आर्द्रभूमियों पर अतिक्रमण के कारण क्षतिग्रस्त हुए हैं, पुनर्वास और पुनर्स्थापन की दृष्टि से अत्यंत आवश्यक हैंय किन्तु ऐसे स्थलों की पुनर्प्राप्ति की प्रक्रिया समशीतोष्ण अथवा उपोष्णकटिबंधीय घासभूमियों की तुलना में कहीं अधिक दीर्घकालिक होगी। विशेष रूप से चांगथांग पठार और त्सो ल्हामो क्षेत्र में शल्क-घास (sedge) चारागाहों को मानव आवास में परिवर्तित करने पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए। त्सो ल्हामो क्षेत्र में पीटलैंड पर अस्थायी आश्रयों के निर्माण से घासभूमियों की हानि और अपरदन की संभावना बढ़ जाती है। अतः पशुपालन तथा वन्यजीव विभागों को संयुक्त रूप से पुनर्स्थापन रणनीतियाँ विकसित कर उन्हें समयबद्ध ढंग से कार्यान्वित करना होगा।

### 5.2 चारागाहों के सह-प्रबंधन हेतु सामुदायिक संस्थाओं का सशक्तिकरण

चारागाह पारितंत्रों के स्वास्थ्य को बनाए रखने के प्रभावी उपायों में से एक है, सामुदायिक संगठनों जैसे कि उत्तराखंड में वन पंचायत, उत्तर सिक्किम में जुम्सा, हिमाचल प्रदेश के किन्नौर और स्पीति में ग्राम पंचायत, तथा विभिन्न क्षेत्रों में पशुपालक संघों को सशक्त बनाना तथा उन्हें सरल संरक्षण और सह-प्रबंधन योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु प्रोत्साहित करना। समुदायों को पारंपरिक पशुपालन प्रथाओं और स्वनियंत्रित संसाधन दोहन प्रणालियों का पालन करने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए। ऐसी ही एक प्रथा का उदाहरण चांगथांग के त्सोकर बेसिन से मिलता है, जहाँ पशुपालक अपने शीतकालीन चारागाहों को स्वस्थ बनाए रखते हैं। शीतकालीन चारागाहों पर अत्यधिक दबाव कम करने हेतु पारंपरिक प्रव्रजन पैटर्न को पुनर्जीवित करना आवश्यक है तथा पशुपालकों को ग्रीष्मकालीन चारागाहों में अधिक समय तक ठहरने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए। त्साबकाक जैसी पारंपरिक व्यवस्थाओं को पुनर्जीवित कर चारागाहों की सुरक्षा की जा सकती है। साथ ही, पशुपालकों को अनुकूलनशील प्रबंधन पद्धतियों का पालन करने हेतु सशक्त किया जाना चाहिए ताकि उनके बीच तथा वन एवं वन्यजीव विभाग जैसी रेखीय एजेंसियों के साथ संघर्षों को न्यूनतम किया जा सके।

वे चारागाह, जिनमें वन्यजीवों की प्रचुरता है, उच्च मूल्य वाली औषधीय वनस्पतियाँ उपलब्ध हैं और जो सांस्कृतिक या प्रकृति-आधारित पर्यटन के महत्त्वपूर्ण गंतव्य बनने की क्षमता रखते हैं, उनके बहुउद्देशीय प्रबंधन हेतु नवीन दृष्टिकोण आवश्यक होंगे। इसके लिए पर्यटन एवं वन्यजीव विभागों से परामर्श और सहयोग अपेक्षित है। कुछ चारागाह खंडों को घरेलू पशुपालन से मुक्त रखकर जंगली शाकाहारियों के साथ प्रतिस्पर्धा से बचा जा सकता है और साथ ही मृदा एवं नमी संरक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है।

ऐसा ही एक सहभागी संरक्षण और पशुधन प्रबंधन दृष्टिकोण हिमाचल प्रदेश के स्पीति क्षेत्र स्थित किब्बर वन्यजीव अभयारण्य से मिलता है, जहाँ ग्रामवासियों ने एक चराई-मुक्त क्षेत्र घोषित किया है। ऐसे आरक्षित क्षेत्रों में जंगली जीव बिना घरेलू पशुओं और मानवीय दबाव से प्रतिस्पर्धा किए सुरक्षित पनपते हैं। स्नो लेपर्ड ट्रस्ट के अनुसार, हिम तेंदुआ आवासों में भी स्थानीय पशुपालक समुदाय ऐसे चराई-मुक्त आरक्षित क्षेत्र बनाते हैं। इन क्षेत्रों में ग्राम परिषद के अधीन आने वाले कुछ चारागाह खंडों को पशुपालन और अन्य संसाधन उपयोग से मुक्त रखकर हिम तेंदुए और उसके शिकार प्राणियों की पुनर्प्राप्ति सुनिश्चित की जाती है। उत्तराखंड के ट्रांस-हिमालयी घाटियों जैसे कि विशेषकर नीति, जोहार, दरमा और ब्यांस-में वन पंचायत प्रणाली के माध्यम से पशुधन चराई और संसाधन उपयोग का नियंत्रण किया जाता है। यद्यपि इस प्रणाली की कुछ सीमाएँ हैं, फिर भी यह अब तक सफलतापूर्वक कार्यरत रही है और इसके सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता है।

### 5.3 पशुपालकों हेतु सतत ऊर्जा का विकास

अधिकांश ट्रांस-हिमालयी चारागाह क्षेत्रों में पशुपालक ईंधन हेतु झाड़ी लकड़ी का उपयोग करते हैं। 2009-10 में भारतीय वन्यजीव संस्थान (*WII*) द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार, चांगथांग पठार में प्रत्येक पशुपालक परिवार शीतकाल (अक्टूबर से अप्रैल) में लगभग 600 किलोग्राम झाड़ी लकड़ी तथा ग्रीष्मकाल में लगभग 400 किलोग्राम प्रति माह उपभोग करता है। यह भी पाया गया कि ग्रीष्म और शीत ऋतु दोनों में ईंधन की आवश्यकताओं की पूर्ति में लकड़ी और गोबर का अनुपात समान था (चित्र 7)।

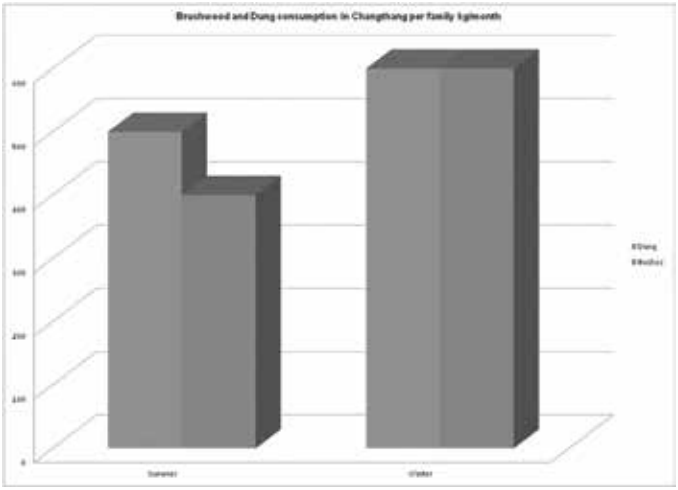


**चित्र 7:** चांगथांग में खाना पकाने और गर्म करने के लिए प्रयुक्त ईंधन और गोबर का अनुपात (WII, अप्रकाशित)।

सर्वेक्षित क्षेत्रों में ऊर्जा के अन्य स्रोत केरोसिन तेल और एलपीजी थे। हिमाचल प्रदेश के लाहौल-स्पीति और किन्नौर जिलों में सर्दियों के दौरान सब्सिडी पर ईंधन लकड़ी, धूम्ररहित चूल्हे और सौर कुकर उपलब्ध कराए जाते हैं। किंतु उत्तराखंड और सिक्किम के उच्च हिमालयी क्षेत्रों में ऐसी व्यवस्था अभी पर्याप्त विकसित नहीं हुई है। हाल के वर्षों में केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख ने कृषि-पशुपालक तथा घुमंतू समुदायों की ऊर्जा आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सब्सिडी योजनाएँ सक्रिय रूप से लागू की हैं। इसके बावजूद चारागाहों से झाड़ी लकड़ी और गोबर का ईंधन हेतु व्यापक उपयोग होता है। अतः यह अत्यावश्यक है कि पशुपालकों को वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत उपलब्ध कराए जाएँ ताकि चारागाहों से झाड़ी लकड़ी की निकासी न्यूनतम हो सके।

### 5.4 विभागीय अभिसरण और क्षमता निर्माण

अब तक हिमालयी क्षेत्र की चारागाह भूमियों को 'साझा संपत्ति संसाधन' के रूप में देखा गया है। यद्यपि कई विभाग जैसे कि पशुपालन विभाग, भेड़ पालन विभाग, ग्रामीण विकास, वन एवं वन्यजीव विभाग सीधे या परोक्ष रूप से इन चारागाहों के स्वास्थ्य से जुड़े हैं, परन्तु इनके बीच शायद ही कोई समन्वय दिखाई देता है। 'रेजलैण्ड प्रबंधन' पर किसी भी प्रकार के व्यावसायिक पाठ्यक्रम की अनुपस्थिति में अग्रिम पंक्ति या मध्यम स्तर के कर्मचारी अक्सर चरागाहों के प्रबंधन के पारिस्थितिक आधार, पोषण पारिस्थितिकी या लद्दाख के उच्च मूल्य वाले चारे के संसाधनों के बुनियादी ज्ञान से अनभिज्ञ रहते हैं। इसलिए यह अत्यंत आवश्यक है कि भेड-पशुपालन तथा वन-वन्यजीव विभागों के अग्रिम पंक्ति के कर्मचारियों को चारागाह भूमि प्रबंधन पर औपचारिक पाठ्यक्रम खोजने और अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। चूंकि भारत

में शायद ही कोई राज्य या राष्ट्रीय संस्थान है जो रेजलैण्ड प्रबंधन पर प्रशिक्षण देता हो, अतः वानिकी प्रशिक्षण संस्थानों में इस विषय पर ऐसे पाठ्यक्रम की शुरुआत करना उचित होगा। रेजलैण्ड प्रबंधन में प्रशिक्षित अधिकारियों को रेजलैण्ड स्वास्थ्य की निगरानी, पारिस्थितिकी पुनर्स्थापन और चारा विकास का कार्य कृषि-चरवाहा गांवों, वन्यजीव संरक्षित क्षेत्रों आदि के आसपास सौंपा जाना चाहिए।

### 5.5 समेकित चारागाह भूमि प्रबंधन और संरक्षण योजना की आवश्यकता

हिमालयी उप-क्षेत्रों की शुष्क अल्पाइन चारागाह भूमि को बहु-आयामी कार्यों के लिए समग्र रूप से प्रबंधित करने की आवश्यकता है। प्रबंधन की क्षेत्रीय और ऊपर से नीचे तक चलने वाली दृष्टि अक्सर पारिस्थितिक तंत्र पर दबाव डालती है और चारागाह भूमि के स्वास्थ्य तथा पारिस्थितिकी सेवाओं के प्रवाह को प्रभावित करती है। समेकित योजना को एक ओर हिमक्षेत्र (क्रायोस्फीयर), स्थानीय जैव विविधता और पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य जैसे बुनियादी संसाधनों को ध्यान में रखना चाहिए, और दूसरी ओर जलवायु परिवर्तन अनुकूलन, मानव कल्याण तथा पशुपालक समुदायों की आजीविका को भी समाहित करना चाहिए। परिदृश्य स्तर पर संरक्षण और विकास योजना के लिए उच्च संरक्षण मूल्य वाले क्षेत्रों की पहचान करना आवश्यक होगा (जैसे, Sahana et al., 2023)। ट्रांस-हिमालयी रेजलैण्ड्स के संसाधनों और पशुपालक उत्पादन के समेकित प्रबंधन हेतु एक व्यापक रणनीतिक ढांचा चित्र 8 में सुझाया गया है। ऐसा ढांचा नवाचार, करीबी एकीकरण और सभी स्तरों पर भागीदारी की मांग करता है, जिससे प्रबंधन को सतत विकास और अन्य राष्ट्रीय लक्ष्यों से जोड़ा जा सके। हाल ही में लद्दाख के संघ शासित प्रदेश प्रशासन ने व्यापक परामर्श के आधार पर रेजलैण्ड और चारा विकास हेतु एक नीति का मसौदा तैयार किया है। हालांकि यह नीति अभी अधिसूचना और क्रियान्वयन की प्रतीक्षा में है। भारतीय ट्रांस-हिमालय के अन्य राज्यों को भी इसी प्रकार की नीतिगत रूप-रेखाएँ लानी चाहिए।

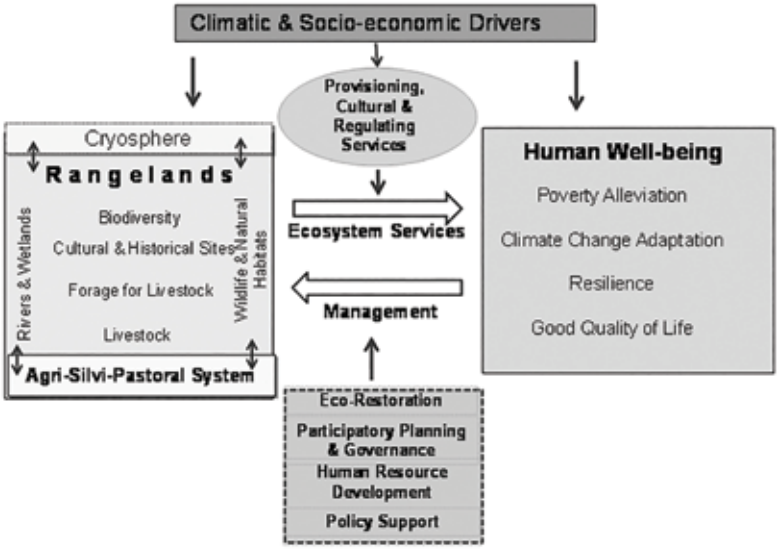


**चित्र 8:** भारतीय ट्रांस-हिमालय में चरागाह संसाधनों और पशुपालन उत्पादन के एकीकृत प्रबंधन के लिए एक रणनीतिक ढांचा

**6. भविष्य की रूपरेखा**

उपरोक्त चर्चा के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ट्रांस-हिमालय में पारंपरिक पशुपालक प्रथाएँ तीव्र गति से क्षीण हो रही हैं और भविष्य में चांगथांग जैसे क्षेत्रों में अधिकतर स्थायी चराई प्रणाली प्रचलित होगी। युवाओं का बड़े पैमाने पर पलायन इस तथ्य को और गंभीर बनाता है, जिससे सतत् पशुपालन से जुड़ा पारंपरिक ज्ञान शीघ्र ही लुप्त हो सकता है। वर्तमान में ट्रांस-हिमालयी चारागाहों से प्राप्त पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं का कोई समग्र आकलन उपलब्ध नहीं है। ऐसा प्रयास उपयुक्त पारिश्रमिक (*Payment for Ecosystem Service*) तथा क्षेत्र के लिए चारागाह नीति निर्धारित करने में अत्यंत सहायक होगा।

ट्रांस-हिमालय के अनेक भागों में सामुदायिक चारा बैंक सह चराई-मुक्त आरक्षित क्षेत्र स्थापित करने की आवश्यकता है। ये बैंक उच्च मूल्य की औषधीय एवं सुगंधित वनस्पतियों तथा चारा प्रजातियों के बीज और भूमिकन्द (राइजोम) संरक्षित कर प्रदर्शन भूखंड (डेमोन्स्ट्रेशन प्लॉट) के रूप में भी कार्य करेंगे। इसके अतिरिक्त, ट्रांस-हिमालय के विभिन्न हिस्सों में एक व्यापक चारागाह निगरानी कार्यक्रम आरंभ करना आवश्यक है। इस कार्यक्रम में मौसम संबंधी मापदंडों की निगरानी, चारागाह उत्पादकता, पुनर्स्थापन स्थलों की पुनर्प्राप्ति, वन्यजीवों द्वारा मौसमी चराई का आकलन, चारा प्रजातियों की संरचना एवं हरित आच्छादन में जलवायु परिवर्तन के कारण हो रहे बदलाव, कार्बन बजटिंग आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

इस कार्यक्रम को 'दीर्घकालिक पारिस्थितिक अवलोकन नेटवर्क' तथा 'कार्बन न्यूट्रल लद्दाख' (पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय, 2020) जैसे कार्यक्रमों, तथा राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय संस्थानों ध् विश्वविद्यालयों के वर्तमान प्रयासों से जोड़ा जा सकता है। इसी प्रकार, वन ध् वन्यजीव विभाग के अग्रिम पंक्ति के कर्मचारियों के लिए चारागाह प्रबंधन प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित किया जाना चाहिए। वानिकी प्रशिक्षण संस्थानों में पारंपरिक वान प्रबंधन पाठ्यक्रमों में भी इसे शामिल किया जा सकता है।

अंततः, राष्ट्रीय संस्थान जैसे राष्ट्रीय हिमालयी पर्यावरण संस्थान को भारतीय ट्रांस-हिमालय के संदर्भ में पारिस्थितिक और सामाजिक अध्ययन को एकीकृत करते हुए अधिक अंतर्विषयी शोध कार्य करने चाहिए। साथ ही उप-क्षेत्रीय विशिष्टताओं में गहराई से उतरकर मौजूदा रूप-रेखाओं को परिष्कृत एवं सत्यापित करना चाहिए ताकि इन चारागाहों में प्रकृति-आधारित समाधानों को प्रभावी ढंग से लागू किया जा सके।

**संदर्भ**


अंगमो, के., कन्वर, एम.एस., दार, आर.ए. एवं रावत, जी.एस. (2016)। पूर्वी लद्दाख में याक पालन प्रथाओं में हाल के परिवर्तन और स्थानीय आजीविकाओं पर इनके प्रभाव। Yak on the Move: Transboundary Challenges and Opportunities for Yak Raising in a Changing Hindu Kush Himalayan Region, इंटरनेशनल सेंटर फॉर इंटीग्रेटेड माउंटेन डेवलपमेंट, नेपाल, मई 2016.

अनाम (2011)। ऊपरी स्पीति परिदृश्य (Kibber Wildlife Sanctuary सहित) के लिए प्रबंधन योजना। हिमाचल प्रदेश वन विभाग और नेचर कंजर्वेशन फाउंडेशन। 299 पृष्ठ।

चंचानी, पी., रावत, जी.एस. एवं गोयल, एस.पी. (2011)। त्सो ल्हामो, उत्तर सिक्किम में खुरदार जीवों की पारिस्थितिकी और संरक्षण। अर्रावातिया, एम.एल. एवं एस. ताम्बे (संपा.) सिक्किम की जैव विविधतारू एक वैश्विक हॉटस्पॉट का अन्वेषण और संरक्षण। सूचना और जनसंपर्क विभाग, सिक्किम सरकार। पृ. 354-365।

डॉल्फस, पी. (2013)। लद्दाख, हिमालय में घुमंतू पशुपालन में परिवर्तन की प्रक्रिया। जर्नल ऑफ द एसोसिएशन फॉर नेपाल एंड हिमालयन स्टडीज, 32 (1)रू 60-72।

जोधा, एन.एस. (1992)। पर्वतीय दृष्टिकोण और स्थिरतारू विकास के लिए एक रूपरेखा। एन.एस. जोधा, एम. बंस्कोटा और टी. पर्टाप (संपा.) सस्टेनेबल माउंटेन

एग्रीकल्चर, ऑक्सफोर्ड एवं आईबीएम पब्लिशिंग कंपनी प्रा. लि., नई दिल्ली। पृ. 41-82।

कुमार, ए., अधकिरी, बी.एस. एवं रावत, जी.एस. (2017)। भारतीय ट्रांस-हिमालय की जैवभौगोलिक सीमाओं का निर्धारणरू संशोधन की आवश्यकता। करंट साइंस 113 (6), 1032-1033।

लक्सॉम, एन.एम., सिंह, आर. एवं शर्मा, आर.के. (2022)। पूर्वी हिमालय के उच्च ऊंचाई वाले चारागाहों में पशुपालक प्रथाएं, दबाव और मानव-वन्यजीव संबंधरू उत्तर सिक्किम के डोकपा पशुपालकों का एक केस अध्ययन। Pastoralism Research Policy and Practice] सितम्बर 2022। DOI: 10-1186/s13570&022&00252&6।

मिश्रा, सी., प्रिंस, एच.एच.टी. एवं विएरन, वैन एस.ई. (2001)। भारत के ट्रांस-हिमालयी चारागाहों में अत्यधिक चराई। एनवायरन. कंजर्व. 28, 279-283।

पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय (MOEF&CC) (2020)। लद्दाख का कार्बन न्यूट्रल विकास। केंद्र शासित प्रदेश लद्दाख प्रशासन एवं पर्यावरण, वन एवं जलवायु परिवर्तन मंत्रालय। 2013 पृष्ठ।

पांडे, ए., प्रधान, एन. एवं घाटे, आर. (2016)। पारंपरिक संस्थाओं का ह्रास, कैलाश पवित्र परिदृश्य, पश्चिमी हिमालय के चारागाहों में प्रवासी पशुपालन के पतन का एक संस्थागत विश्लेषण। एनवायरनमेंटल सोशियोलॉजी, दिसम्बर 2016। https://doi-org/10-1080/23251042-2016-1272179A।

रावत, जी.एस. (2007)। पश्चिमी हिमालय में पशुपालक प्रथाएं, वन्य जीव और अल्पाइन घासभूमियों की संरक्षण स्थिति। जे. बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी 104 (1), 251-257।

रावत, जी.एस. एवं अधकिरी, बी.एस. (2005)। पूर्वी लद्दाख, भारत में सहस्राब्दियों की चराई का इतिहासरू चारागाह वनस्पति में परिलक्षित। ईवा, एम. स्पेन एट अल. (संपा.) भूमि उपयोग परिवर्तन और पर्वतीय जैव विविधता। CRC टेलर एंड फ्रांसिस। पृ. 199-210।

रजा, पी. (2024)। लद्दाख, भारतीय ट्रांस-हिमालय में कृषिदृपशुपालन प्रथाएं और उनके वन्य स्तनधारियों पर प्रभाव। पीएच.डी. शोध प्रबंध (अप्रकाशित)। वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया एवं सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट।

रॉजर्स, डब्ल्यू.ए. एवं पनवार, एच.एस. (1988)। भारत के लिए जैवभौगोलिक आधार पर संरक्षित क्षेत्र योजना। खंड 1 एवं 2। वाइल्डलाइफ इंस्टीट्यूट ऑफ इंडिया, देहरादून।

सहाना, एम., साजिद सुल्तान, एम., अरिंद्रन, जी., घोषाल, ए., सिवदास, ए., राज, के. एवं परमेश्वरन, एस. (2023)। दुर्लभ, स्थानिक और संकटग्रस्त (RET) प्रजातियों के लिए उच्च संरक्षण मूल्य वाले क्षेत्रों का आकलनरू भारत के उच्च ऊंचाई वाले चांगथंग परिदृश्य में एक अध्ययन। जर्नल फॉर नेचर कंजर्वेशन, 73, 126406, पृ. 1-21।

सिंह, आर., शर्मा, आर.के., बाबू, एस. एवं भटनागर, वाई. वी. (2020)। पारंपरिक पारिस्थितिक ज्ञान और ट्रांस-हिमालय के अपर स्पीति परिदृश्य में कृषि-पशुपालन प्रणाली में समकालीन परिवर्तन। Pastoralism: Research, Policy and Practice, 10:15। https://doi-org/10-1186/s13570&020&00169&y।

उनियाल, एस.के., अवस्थी, ए. एवं रावत, जी.एस. (2005)। चांगथंग, पूर्वी लद्दाख के चारागाहों में Eurotiaceratoides Mey की बायोमास उपलब्धता और चारे की गुणवत्ता। करंट साइंस, 89 (1), 201-205।

# गो0 ब0 पंत स्मारक व्याख्यान

**I**

डॉ. एम. एस स्वामीनाथन, निदेशक, सीआरएसएआरडी, मद्रास-1991

**II**

डॉ. टी.एन. खुशबू, जवाहरलाल नेहरू फेलो, टीइआरआई, नई दिल्ली- 1992

**III**

श्री वी. राजगोपालन, उपाध्यक्ष, विश्व बैंक- 1993

**IV**

प्रोफेसर यू.आर. राव, सदस्य, योजना आयोग, नई दिल्ली-1994

**V**

डॉ. एस.जेड. कासिम, सदस्य, योजना आयोग, नई दिल्ली- 1995

**VI**

प्रोफेसर एस.के. जोशी, विक्रम साराभाई प्रोफेसर, पूर्व महानिदेशक, सीएसआईआर और सचिव, डीएसआईआर, भारत सरकार- 1996

**VII**

प्रोफेसर के.एस. वल्दिया, भटनागर अनुसंधान प्रोफेसर, जेएनसीएएसआर, बैंगलोर- 1997

**VIII**

प्रोफेसर वी.के. गौर, प्रतिष्ठित प्रोफेसर, आईआईए, बैंगलोर- 1998

**IX**

प्रोफेसर एच.वाई. मोहन राम, आईएनएसए वरिष्ठ वैज्ञानिक, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली- 2000

**X**

प्रोफेसर जे. एस. सिंह, एमेरिटस प्रोफेसर, बीएचयू, वाराणसी- 2004

**XI**

प्रोफेसर माधव गादगिल, पारिस्थितिक विज्ञान केंद्र, आईआईएससी, बैंगलोर- 2005

**XII**

प्रोफेसर एस.एस. हांडा, पूर्व निदेशक, पीआरएल (सीएसआईआर), जम्मू- 2006

**XIII**

डॉ. लालजी सिंह, डायरेक्टर, सीसीएमबी, हैदराबाद- 2007

**XIV**

प्रोफेसर रोद्दम नरसिम्हा, चेयरमैन, एफएमयू, जेएनसीएएसआर, बैंगलोर- 2008

**XV**

डॉ. आर. एस. टोलिया, मुख्य सूचना आयुक्त, उत्तराखंड सरकार, देहरादून- 2009

**XVI**

प्रोफेसर राघवेंद्र गडगकर, सीईएस और सीसीएस, आईआईएससी, बैंगलोर- 2010

**XVII**

प्रोफेसर वी. नंजुंदैया, जेएनसीएएसआर, बैंगलोर- 2011

**XVIII**

डॉ. किरीट एस. पारिख, आईआरएडीइ, नई दिल्ली & पूर्व सदस्य, योजना आयोग- 2012

**XIX**

प्रोफेसर जयन्त बंद्योपाध्याय, पूर्व प्रो. एवं प्रमुख, आईआईएम, कलकत्ता- 2013

**XX**

प्रोफेसर टी.एस. पपोला, औद्योगिक विकास अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली- 2014

**XXI**

डॉ. डेविड मोल्डन, महानिदेशक, आईसीआईएमओडी, नेपाल- 2015

**XXII**

डॉ. विजय राघवन, सचिव, जैव प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली-2016

**XXIII**

प्रोफेसर एस.पी. सिंह, पूर्व कुलपति, एचएनबी गढ़वाल विश्वविद्यालय, उत्तराखंड- 2017

**XXIV**

प्रोफेसर पी.एस. रॉय, पूर्व निदेशक, भारतीय रिमोट सेंसिंग संस्थान, देहरादून- 2018

**XXV**

प्रोफेसर रमन सुकुमार, पारिस्थितिकी के प्रोफेसर, भारतीय विज्ञान संस्थान, बैंगलोर- 2019

**XXVI**

प्रोफेसर तेज प्रताप, कुलपति जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर- 2020

**XXVII**

डॉ. आर. राघवेंद्र राव, अध्यक्ष, कर्नाटक राज्य पर्यावरण मूल्यांकन समिति- 2021

**XXVIII**

डॉ. नवीन जुयाल, पूर्व वरिष्ठ वैज्ञानिक, भौतिक अनुसंधान प्रयोगशाला, अहमदाबाद, गुजरात, भारतीय भूभौतिकीय संघ के फेलो- 2022

**XXIX**

प्रोफेसर मोहम्मद लतीफ खान, विशिष्ट वरिष्ठ प्राध्यापक वनस्पति विज्ञान, डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय (सेंट्रल यूनिवर्सिटी), सागर, मध्य प्रदेश

**XXX**

प्रोफेसर ज़फ़र अहमद रेशी, प्रोफेसर, कश्मीर विश्वविद्यालय, वनस्पति विज्ञान विभाग, श्रीनगर